शुंग एवं सातवाहन युगीन स्तूप

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग में

बी०ए० तृतीय वर्ष की संग्रहालय एवं पुरातत्त्व विज्ञान के
पाठ्यक्रमानुसार परीक्षा हेतु प्रस्तुत

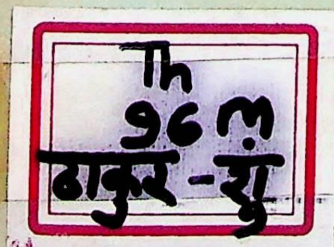
लघु शोध-प्रबन्ध



1997

निदेशक
डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्त्व विभाग

प्रस्तुतकर्ता
राजेश कुमार ठाकुर
बी०ए० तृतीय वर्ष



गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

प्राचीन ... ाग में

ATION





निर्देशक
डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्त्व विभाग

प्रस्तुतकर्ता
राजेश कुमार ठाकुर
बी०ए० तृतीय वर्ष

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

शुंग एवं सातवाहन युगीन स्तूप

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग में

बी०ए० तृतीय वर्ष की संग्रहालय एवं पुरातत्त्व विज्ञान के
पाठ्यक्रमानुसार परीक्षा हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबन्ध





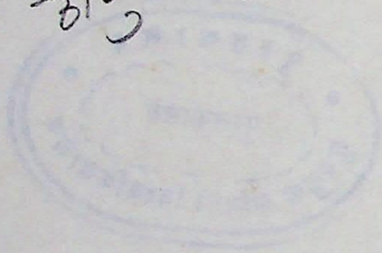


1997

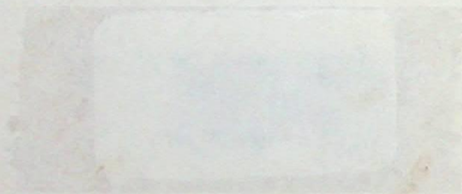
निदेशक
डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्त्व विभाग

प्रस्तुतकर्ता
राजेश कुमार ठाकुर
बी०ए० तृतीय वर्ष

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार







विषय सूची

शुंग एवं सातवाहन कालीन स्तूप:-

प्रस्तावना:- मौर्य शासन काल के अन्तिम वर्षों में मगध साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लग गई थी, तथा पश्चिमोत्तर भाग में विदेशी आक्रमण होने लग गये थे। देश के भीतरी भागों में विद्रोह प्रारम्भ हो गये थे। कलिंग, आन्ध्र और महाराष्ट्र मौर्य साम्राज्य की आधीनता से मुक्त हो चुके थे। मौर्य वंश के अन्तिम राजा इतने विलासी और निर्बल थे कि वे चन्द्र गुप्त मौर्य द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्य को सम्भाल ना सके। परिणाम स्वरूप मौर्य वंश के अन्तिम राजा वृहद्रथ के प्रधान सेनापति पुष्यमित्र ने धोखे से वृहद्रथ की हत्या कर दी, और सम्पूर्ण राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इस प्रकार 185 ई० पू० के लगभग मौर्य वंश का अन्त हुआ।

पुष्यमित्र वर्ण से ब्राहम्ण था और शुंग कुल में उत्पन्न हुआ था। उसी का वंश शुंग वंश कहलाया। भारतीय इतिहास में शुंग-वंश का समय लगभग {184-72} ई० पू० तक माना गया है।

पुष्यमित्र के राजा बन जाने पर मगध साम्राज्य को बहुत बल मिला, निर्बल मौर्य शासकों के शासन काल में जो अनेक प्रदेश मगध साम्राज्य की अधीनता से स्वतन्त्र हो गये थे। पुष्यमित्र ने उन्हें जीत कर पुन: अपने राज्य के अधीन कर लिया। विदर्भ {बिहार} का शासक यज्ञसेन भी मगध साम्राज्य की निर्बलता से

लाभ उठाकर स्वतन्त्र हो गया था। पुष्यमित्र के आदेश से अग्निमित्र ने उस पर आक्रमण कर उसको अपने राज्य के अधीन कर लिया। कालिदास के प्रसिद्ध नाटक "मालविकाअग्निमित्र" में यज्ञसेन की चचेरी बहन मालविका और अग्निमित्र के स्नेह की कथा के साथ-साथ विदर्भ विजय का वृतान्त भी उल्लिखित है।

कलिङ्ग [उडिसा] का राजा खारवेल भी बड़ा प्रतापी एवं महत्वकांक्षी राजा था, उसने दुर-दुर तक आक्रमण कर अपनी शक्ति का विस्तार किया। उनके हाथीगुफा लेख द्वारा ज्ञात होता है कि उसने मगध पर आक्रमण कर वहाँ के राजा कोपरास्त किया था। हाथीगुफा शिलालेख में उसका नाम दिया गया है, अनेक विद्वानों ने उसे बृहस्पतिमित्र पढ़ा है। बृहस्पति और पुष्य प्रर्यायवाची शब्द हैं, अत: "जायसवाल" ने यह परिणाम निकाला है कि खारवेल ने पुष्यमित्र को ही परास्त किया था। परन्तु अनेक विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं। हाथीगुफा शिलालेख का यह अंश अस्पष्ट है सम्भवत: खारवेल का मगध पर आक्रमण मौर्य शासक शलिशुक या उसके किसी उत्तराधिकारी के समय में हुआ होगा।

महाभाष्य के रचियता व्याकरणाचार्य महर्षि पतंजलि पुष्यमित्र के समय में ही हुये थे, और सम्भवत: उसके यज्ञ में प्रधान पुरोहित थे। अपनी शक्ति को दृढ़ कर पुष्यमित्र ने अपने प्रभुत्व की पुष्टि के लिए अश्वमेध यज्ञ किया। युनानियों

ने उसके प्रभुत्व को चुनौती दी। परन्तु पुष्यमित्र ने बड़े साहस से यूनानी आक्रान्ताओं को पीछे ढकेल दिया, और अपनी महान विजय के उपलक्ष्य में दूसरा अश्वमेध यज्ञ किया। इस यज्ञ में महर्षि पतंजलि स्वयं पुरोहित थे, जैसा कि महाभाष्य के अवतरण "इह पुष्यमित्रं याजयाम:" [हम पुष्यमित्र के लिए विदिशा में यज्ञ करा रहे हैं] से प्रकट होता है। अयोध्या में प्राप्त पुष्यमित्र शुंग के धनदेव अभिलेख से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है। शुंग सम्राट प्राचीन वैदिक धर्म के अनुयायी थे। उनके समय में बौद्ध और जैन धर्मों का पतन होकर वैदिक धर्म का पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ, उनके द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ ही इसके प्रमाण है। "दिव्यावदान" के अनुसार पुष्यमित्र बौद्धों से द्वेष करता था, उसने बहुत से बौद्ध स्तूपों को ध्वंस कराया एवं बहुत से बौद्ध-श्रमणों की हत्या भी करवायी थी।

विदर्भ को जीत एवं यवनों को परास्त कर पुष्यमित्र-शुंग मगध साम्राज्य के विलुप्त गौरव का पुनरुद्धार करने में समर्थ हुआ, उसके साम्राज्य की सीमा पश्चिम में सिन्धु नदी तक अवश्य थी। "दिव्यावदान" के अनुसार साकल [सियालकोट] उसके शिलालेख से इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता, कि मध्यदेश पर उसका शासन भलीभांति कायम था। विदर्भ की विजय से उसके

- 4 -

राज्य की दक्षिण सीमा नर्मदा नदी तक पहुंच गयी थी। इस प्रकार पुष्यमित्र का साम्राज्य हिमालय से नर्मदा तक और सिन्धु से प्राच्य समुद्र तक विस्तृत था।

सातवाहन काल:-

मौर्य वंश की निर्बलता से लाभ उठाकर जो अनेक राज्य मगध साम्राज्य की आधीनता से स्वतन्त्र हुये, उनमें दक्षिण का सातवाहन वंश जो आन्ध्र वंश कहा गया है। इस वंश का मूल स्थान पश्चिमी महाराष्ट्र व कर्नाटक में था। वेल्लारि में उपलब्ध हुये एक शिलालेख में उस प्रदेश को "सातवाहनिहार" कहा गया है। सातवाहन वंश के लेख प्राकृत भाषा में लिखे गये हैं, और इस वंश के राजाओं की भाषा तेलुगु न होकर प्राकृत थी। बाद में जब पश्चिमी महाराष्ट्र के सातवाहनों ने दक्षिण में अपनी शक्ति का विस्तार किया, तो उन्होंने आन्ध्र देश को जीत लिया था। आन्ध्र के शासक होने के कारण ही शायद सातवाहन वंश को आन्ध्र वंश कहा गया है।

सातवाहन-वंश के संस्थापक का नाम सिमुक था। उसकी राजधानी महाराष्ट्र में गोदावरी नदी के तट पर स्थित प्रतिष्ठान या पैठन थी। नासिक तथा उसके आसपास के क्षेत्र सिमुक के राज्य के अन्तर्गत थे। सिमुक के बाद उसका

भाई कृष्ण और कृष्ण के बाद उसका पुत्र सातकर्णि राजा बना ।सातकर्णि ने महाराष्ट्र के एक प्रमुख सरदार की कन्या नायनिका के साथ विवाह किया ।इससे उसकी शक्ति बहुत बढ़गयी । सातकर्णि बड़ा शक्तिशाली राजा था, धीरे-धीरे वह सम्पूर्ण महाराष्ट्र और कर्नाटक का स्वामी हो गया । पश्चिमी घाट के सब प्रदेश और कोंकण के बन्दरगाह उसके अधीन थे । सातकर्णि ने अपनी विजयों के उपलक्ष में दो बार अश्वमेघ यज्ञ किया । वह मगधराज पुष्यमित्र शुंग और कलिंग राज खारवेल का समकालीन था, और 175 ई0 पू0 के लगभग राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था। खारवेल के साथ भी इसके अनेक युद्ध हुये थे। उसकी शक्ति की उपेक्षा करके ही कलिंगराज खारवेल पश्चिम में दूर-दूर तक अपनी विजय पताका को फहरा सका था।

सातकर्णि के बाद लगभग एक सदी तक सातवाहन-वंश ने कोई विशेष उन्नति नहीं की। इस राजवंश का शासन केवल दक्षिणापथ तक ही सीमित रहा। बाद में इस वंश में एक ऐसे वीर पुरुष का जन्म हुआ, जिसने अपने कुल की शक्ति को बहुत दूर-दूर तक बढ़ा लिया। इसका नाम गौतमी पुत्र सातकर्णि था। यह सातवाहन वंश का सबसे प्रतापी और महत्वकांक्षी राजा था। गौतमी पुत्र

- 6 -

का युग सातवाहनों के पुनरुत्थान का युग था। सातवाहन वंश के इस सर्वप्रसिद्ध शासक ने वंश के विपत्तिग्रस्त भाग्य को ही नहीं बचाया वरन् विस्तृत प्रदेशों को भीअपने साम्राज्य में सम्मिलित किया। सातवाहनों के इस प्रतापी नरेश को शकों, यवनों और प ह्लवों का विनाशकर्ता कहा गया है। इसका इतिहास माता बलश्री के सिक गुहालेख से मालूम होता है। इस लेख के अनुसार गौतमी पुत्र अद्वितीय धनुर्धर और शूर ब्राहमण था, जिसके वाहनों ने तीन समुद्रों का जल पिया था, जिसने क्षत्रियों के दर्प और मान का मर्दन किया था, और जिसने सातवाहन कुल के यश का प्रतिष्ठापन किया था।

गौतमी पुत्र सातकर्णि के बाद उसका पुत्र वासिष्ठी पुत्र श्री पुलोमावि द्वितीया सिंहासन पर बैठा। इसके समय में सातवाहन साम्राज्य अपने गौरव तथा समृद्धि के शिखर तक पहुंच गया था। यह भी अपने पिता की भांति पराक्रमी और विजेता था। किन्तु इसके अन्तिम समय में क्षत्रप शक्ति का विस्तार होने लग गया था।

पुलुमावि द्वितीय के बाद उसका भाई शिव सिरि सातकर्णि राज सिंहासन पर बैठा । इसके काल से सातवाहन साम्राज्य का ह्रास और पतन प्रारम्भ होता है । कन्हेरी के दरीगृह के अभिलेख में लिखा है कि वाशिष्ठी पुत्रीसातकर्णि ने महाक्षत्रपरूद्र की पुत्री से विवाह किया । इसकी रजत मुद्राऐं भारत के क्षत्रपों के नमुने की बनी है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि वह रूद्रदामन का दामाद था। विवरण के अनुसार रूद्रदामा ने युद्धमें दो बार इसको हराया ,किन्तु निकट सम्बन्धी होने के कारणमारा नहीं ।

शिव श्री सातकर्णि के बाद शिव श्री पुलुमावी इसका उत्तराधिकारीहुआ। जिसे पुलुमावी तृतीया भी कहा जाता है। सम्भवत: वह पुलुमावि द्वितीया का पौत्र था और यही वह सातवाहन राजा था जिसे रूद्रदामन ने अपने गिरनार के अभिलेख में दो बार पराजित करने का उल्लेख किया है। युद्धका कारण रूद्रदामन सात वाहनों के हाथों नहपान की पराजय का बदला लेना चाहता था और खोए हुएक्षत्रप प्रदेशों पर पुन: अधिकार करना चाहता था। इस नरेश के समय में क्षत्रपों व सातवाहनों में एक बार फिरयुद्ध प्रारम्भ हो गया था। क्षत्रपोंने सातवाहन साम्राज्य को एक ऐसा धक्का दिया कि परवर्ती काल मे उनकी दशा बिगड़ती गयी।

-8-

पुलुमावी तृतीय के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र शिव सकन्द सातकर्णि हुआ । इस राजा ने लगभग तीन वर्ष तक राज्य किया .इसके राज्य काल के विषय में कोई भी जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

पुराणों में शिवस्कन्द सात कर्णि के बाद यज्ञश्री सातकर्णि का नाम आता है।यज्ञश्री का शिवस्कन्द सातकर्णि से सम्बन्ध निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वान इसे इसकी रजत मुद्राओं के आधार पर वतरपुण का पुत्र स्वीकार करते हैं। जब यज्ञश्री ने शासनकी बागडोरसम्भाली तब सातवाहन साम्राज्य अपने समय की बढ़ती हुई शक्तियों से जर्जर हो चुका था। इसने विस्तृत विजयों द्वारा उसे पुनर्जीवित किया इसके अभिलेख महाराष्ट्र के नासिक आन्ध्रप्रदेश के कृष्णा जिले मे तथा सिक्के गुजरात, काठियावाड़, अपरान्त, विदर्भ, महाराष्ट्र के चान्दा जिले में मिले हैं। इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि यज्ञश्री का साम्राज्य अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ था। सम्भवत: यह वही राजा है, जिसे बाणभट्टने "त्रिसमुद्राधिपति" कहा है और नागार्जुन सन्यासी का मित्र बताया है । इसने शकों द्वारा जीते हुये अधिकत्तर प्रदेश वापिस ले लिए। इसकी मुद्राओं पर बने घोडे से प्रतीत होता हैकि उसने अपनी विजय को अश्वमेध से सम्पन्न किया था। यज्ञश्री के अन्तिम दिनों में सातवाहनों की शक्ति क्षीण होनी प्रारम्भ हो गयी थी।

सातवाहनों के अन्तिम शासकों का इतिहास अन्धकारमय है। यज्ञश्री के बाद सम्भवत: वाशिष्टी पुत्र सिरि चण्डसाति राजा बना। इसके विषय में जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

श्री चण्डसाति के बाद सम्भवत: पुलुमावि चतुर्थ राजा बना। यह इस वंश का अन्तिम शासक था। यद्यपि आन्ध्रप्रदेश में इसके शासन का कोई चिन्ह प्राप्त नहीं होता है, किन्तु नि:सन्देह इस भाग पर सातवाहनों का आधिपत्य बना रहा, क्योंकि पुलुमावि के नाम का एक अभिलेख वेलारी में पाया गया है। इनकी मुद्राएँ अकोला निधि में प्राप्त हुई है। यह सातवाहन साम्राज्य का अन्तिम नरेश था। इसके साथ ही 227 ई0 के लगभग में सातवाहन साम्राज्य का अन्त भी हो गया। किन कारणों से इस वंश का विनाश हुआ, यह कहना कठिन है, किन्तु इतना निश्चित है कि यज्ञश्री के उत्तराधिकारी दुर्बल थे और उनके समय में नए कुलों ने अपनी शक्ति का संगठन कर लिया था।

कला का परिचय

मानव के भावों को प्रकट करने का नाम कला है। इन भावों को व्यक्त करने को ही पण्डितों ने अपनी आत्मा के भावों को व्यक्त करना या सत्य को व्यक्त करना कहा है। कला केवल भावों का प्रदर्शन ही नहीं अपितु आध्यात्मिक सन्देश की जनक भी है। कला इतिहास का स्वयं एक शक्तिशाली प्रभाव है। भावो को प्रकट करने की मूल प्रवृत्तियों पर आश्रित होने के कारण यह व्यापक और अमर है।

विभिन्न देशों के विद्वानों ने कला की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है। परन्तु कला के अर्थ की सही व्याख्या करना बहुत कठीन है। कला के द्वारा ही किसी देश के सांस्कृतिक गौरव तथा उसके विकास और उत्थान का परिचय मिलता है।

कला संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका प्रयोग कई अर्थों में होता रहा है। साधारणतया कला शब्द की तीन तरह से व्युत्पत्ति दी गई है।

कला शब्द का अर्थ सुन्दर या {कोमल} है। इसका कल धातु-शब्द करना या बजाना से भी सम्बन्ध बताया जाता है। कुछ विद्वान कड् प्रसन्न करना धातु भी जोड़ने के पक्ष में है। इस प्रकार "क" से आनन्द का भी बोध होता है। संस्कृत साहित्य

में कई प्रकार से कला शब्द का प्रयोग मिलता है। अंग्रेजी भाषा में कला के लिए प्रयुक्त आर्ट शब्द के मूल में अर् धातु है, जिसका अर्थ बनाना या पैदा करना होता है।

कला का मुख्य साधन कल्पना है। कलाकार सामाजिक जीवन से दूर जाकर केवल आश्चर्य का निर्माण करता है। कल्पना के द्वारा कलाकार ध्यान को एकाग्रचित्त करके कृतियों का निर्माण करता है। चित्त एवं ध्यान योग को भी कला में प्रमुख स्थान देते हैं।

कला वह है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है। उसे पशु के समान धरातल से ऊपर उठाती है। कला से हमें सुख मिलता है, तथा हमारे जीवन की वृद्धि होती है। इसके साथ ही हमारी सौन्दर्य भावना में निखार आता है। स्थूल जीवन में संस्कृति की अभिव्यक्ति कला को जन्म देती है। कला इसलिए आवश्यक है कि यान्त्रिक दासता से मनुष्य को बचा सके।

कला के रूप में छिपे हुये सूक्ष्म अर्थ का परिचय प्राप्त करने से कला की सौन्दर्यानुभूति पूर्ण गम्भीर बनती है। यही भारतीय मत है। आध्यात्म के बिना केवल सौन्दर्य या चारुत्व सौभाग्य विहीन है। उस अवस्था में कला की स्थिति उस स्त्री के समान है, जो अपना पति ना पा सकी हो।

यवन रोम तथा अन्य पाश्चात्य कलाऐं मात्र "सुन्दरम्" तत्व का निरूपण करती हैं। किन्तु भारतीय कला उसे "सत्यम" तथा "शिवम" से समन्वित कर सार्वभौमिकता प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता का गुण भारतीय कला में पूर्णतः व्याप्त है।

भारतीय कला भारत के विचार, धर्म, तत्वज्ञान और संस्कृति का दर्पण है। भारतीय जीवन की विस्तृत व्याख्या कला के माध्यम से संजीव एवं अमर हो गयी है। यहा के लोगों का जीवन कैसा था, उनके विश्वास क्या थे, उनकी उपासना विधि कैसी थी, और उन्होंने क्या-क्या निर्माण किये, इन सब का अंकन भारतीय कला से सुरक्षित है।

स्तूपों का उदभव एवं विकास:-

भारत में स्तूपों का बनना कब से शुरू हुआ, यह आज निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। विद्वानों का मत है कि:- स्तूपों की कल्पना ऋग्वेद में पाई जाती है। वहा अग्नि की उठती हुई ज्वालाओं को स्तूप कहा है।[1]

1- जुषस्वन: समिधमग्ने अद्य शोचा वृहध्यजतं धूममृण्वन्
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपै: सं रश्मिभिस्ततन:सूर्यस्य।। ऋ० 7/2/1।

वितान लेकर फैले हुये वृक्ष के साथ स्तूप की तुलना की गई है(ऋ॰ 1/24/7)[2] ऋग्वेद में अंगिरस के एक पुत्र का नाम हिरण्यस्तूप पाया जाता है। वह सलोक के सविता देव की स्तुति करता है। जिसकी सुनहली किरणे चारों ओर स्तूप के आकार में फैली हुई है।[3] किसी मूलभूत स्वर्ग के स्तूप की कल्पना जैन साहित्य में भी पाई जाती है। जहाँ मथुरा के प्राचीन स्तूप को देव निर्मित कहा गया है। वस्तुतः विराट् प्राण तत्व की संज्ञा हिरण्यस्तूप थी। स्तूपों का सम्बन्ध प्रायः बौद्ध धर्म से माना जाता है। स्तूप वैदिक काल में यज्ञ के समय गाड़े गए, जाने वाले खम्भों का ही एक विकसित रूप थे।

इसमें कोई शक नहीं है कि पत्थर के इतने बड़े-बड़े स्तम्भों को खड़ा करने की परम्परा अशोक के समय में ही प्रारम्भ हुई। उन्होंने इसके ऊपर चार पशु हाथी, बैल, घोड़ा और सिंह स्थापित कराये। इनका सम्बन्ध बुद्धदेव के जीवन से माना गया है।

2- अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः॥

3- हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्ये वांशु प्रति जागराहम्॥

बौद्ध किम्वदन्तियों के अनुसार अशोक ने अपने समय में 84,000 स्तूपों की स्थापना करवाई थी। जिनमें सांची भरहुत बोध गया अमरावती एवं नागार्जुनी कोंडा के स्तूप मुख्य हैं। परन्तु इन स्तूपों के चारों ओर वेदिका और तोरण द्वारों का निर्माण शुंग एवं सातवाहन काल में हुआ। शुंग एवं सातवाहन कालीन शासकों नहीं इन महास्तूपों को परावर्द्धित किया। इन स्तूपो के अलावा और भी अनेक स्तूपो का निर्माण इन युगों में हुआ।

स्तूप की निर्माण विधि

सर्वप्रथम स्तूप का निर्माण अलौकिक महात्मा बुद्ध की अस्थियों से प्रारम्भ हुआ। पहले अस्थियों को मिट्टी से ढक कर उन पर धुआ बना दिया जाता था। इसके बाद कच्ची एवं पक्की ईंट्टों का प्रयोग किया जाने लगा। विकसित स्तूप कला के प्रमुख अङ्ग निम्नलिखित हैं:-

(1) महावेदिका (नीव के ऊपर)।

(2) अण्डाकार रूप।

(3) हर्मिका।

(4) छत्रावली।

(5) तोरण द्वार।

महावेदिका:-

इसका निर्माण नींव पर किया जाता था। पत्थर के टुकडो से नींव

का निर्माण होता था। इस वेदिका की कल्पना वैदिक साहित्यों में प्राप्त होती है। वैदिक अनुकृति पर ही स्तूप की महावेदिका का निर्माण किया गया। कौमुदी के नारायण वाटक में वेदिका स्वरूप की जानकारी मिलती है। सांची, भरहुत, एवं अमरावती के महास्तूपों में वेदिका निर्माण कला द्रष्टव्य है। प्रारम्भिक समय में काष्ठकी वेदिका बनाई जाती थी। इसके उपरान्त विकसित अवस्था में प्रस्तर की वेदिका का निर्माण किया जाना प्रारम्भ हुआ।

अण्डाकार रूप :-
महावेदिका के उपर अण्डाकार आकृति का एक स्तूह निर्मित किया जाता था। इस थूहे को कला शास्त्र वेताओं ने अण्ड नाम प्रदान किया है। प्रारम्भिक काल में स्तूप की ऊंचाई कम होती थी, परन्तु परवर्ती काल में व्यास के अनुपात से ऊंचाई अण्डाकार रूप में बढ़ती गई। शीर्ष भाग को वृत्ताकार रूप पूरा न करके उसे सपाट (चपटा) बनाया जाता था। इसका वास्तविक रूप जानने के लिए सांची एवं भरहुत स्तूप का स्वरूप देखना आवश्यक है।

हर्मिका :-
अण्डाकार स्वरूप के शीर्ष भाग (चपटा हिस्सा की तरफ) पर इसका निर्माण होता था। यह स्तूप का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग होता था। इसी को हर्मिका नाम दिया गया था। इसका शाब्दिक अभिप्राय देव स्थान है।

द्युलोक के समकक्ष इसकी तुलना कल्पित थी। इसी के अन्दर धातुअवशेष रखा जाता था।

छत्रावली:-

हर्मिका के उपर तीन छत्र बनाये जाते थे। स्तूप वास्तुकला के विकास के साथ ही इसकी संख्या में परिवर्तन हुआ और तीन के स्थान पर सात छत्र बनाये जाने लगे।

तोरणद्वार:-

वेदिका के चारो ओर चार तोरणद्वार बनाये जाने की प्रथा थी। इसके मूल में स्वस्तिक (卐) था। चार दिशाओं (पूरब, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण) को स्वस्तिक का रूप माना गया था। इन चारो दिशाओं के चार अधिपति माने गये थे। "चातुर्महाराजि" रूप में इनकी उपासना वैदिक काल से ही प्रचलित थी। इसी कल्पना के अनुरूप सांची एवं भरहुत के स्तूपों में तोरण द्वारों का निर्माण किया गया था। इन पर अभिकल्प विभिन्न प्रकार का बनाया जाता था। जिससे स्तूप शोभा में अभिवृद्धि होती थी और ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी करने में सहायता होती है।

तोरण द्वार के स्तम्भों पर अभिकल्प अंकित किया जाता था। भिन्न-भिन्न काल में विभिन्न प्रकार का दृश्य प्रदर्शित किया गया। शिल्प प्रदर्शन में

लोक प्रचलित एवं पूर्व मान्यता को स्थान दिया गया था। कलाशास्त्र वेताओं के अनुसार स्तूप शिव सृष्टि का रूप था। इसके महास्वरूप का जनमानस पर अधिक प्रभाव पड़ता था। चक्र महात्मा बुद्ध के [धर्म चक्र परवर्तन] धम्म चक्क पवत्तन का प्रतीक था। दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय तो शिव चक्र की तरह घूमा करता है।

वैदिक यूप एवं स्तूप में बहुत समानता है। जिस तरह यूप का चार भाग कल्पित था। उसी प्रकार इसमें भी पाया जाता है। इसलिए यह मानना समीचीन है कि स्तूप की उत्पत्ति वैदिक मान्यताओं के आधार पर हुई।

शुंग एवं सातवाहन कालीन स्तूप :-

शुंग एवं सातवाहन काल को स्तूपनिर्माण का स्वर्णिम काल कह सकते हैं। शुंगों ने उत्तरापथ और सातवाहनों नेदक्षिणापथ में अशोक द्वारा स्थापित महाकाय स्तूपों को शिलापट्टों से अच्छादित कर उन्हें अल्पेशाख्य से महेशाख्य के रूप में परिणित किया।

इस मौर्येतर युग की बहुत सी मूर्तियां, गुहामन्दिर और स्तूप इस समय उपलब्ध होते हैं। भरहुत का वह प्रसिद्ध स्तूप जिसके तोरणों और जगलों के अवशेष कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है कापुर्ननिर्माण शुंग काल में ही हुआ है। बोधगया के मन्दिर के चारों ओरका एक जंगला भी इस युग की महान कृति है, उस पर अहिच्छत्र के राजा इन्द्रमित्र और मथुरा के राजाब्राहमित्र की रानीओं के नाम उत्कीर्ण है। ये दोनों राजा शुंगों के सामन्त थे। इससे यह विदित होता है कि बोधगया के प्रसिद्ध मन्दिरके अनेक प्राचीन अंश शुंग काल में निर्मित हुऐ थे। सांची के प्राचीन स्तुप के अनेक अंश भी इसी काल में निर्मित हुऐ थे। वहां के बड़े स्तूप दक्षिण के तोरण पर राजा सातकर्णि का नाम उत्कीर्ण है। भरहुत सांची अमरावती, बोधगया, आदि के ये प्राचीन स्तूप लम्बे (सुदीर्घ) समय तक धीरे-धीरे

बनते रहे । इनके निर्माण कार्य का प्रारम्भ मौर्य काल में ही शुरू हो गया था, पर शुंग एवं सातवाहन राजाओं के समय में उनमें निरन्तर वृद्धि होती चली गयी और जिन विविध दानीयों के दान से जो- जो अंग समय-समय निर्मित होते गये । उनके नाम बहुधा उन पर उत्कीर्ण भी कर दिये गये।

इस काल में स्तूपों में मूर्तियाँ भी प्र्याप्त संख्या में उकेरी गयी है । इनका स्पष्ट उदाहरण भरहुत सांची एवं अमरावती के स्तूपों में देखने को मिलता है । भरहुत सांची बोधगया और अमरावती के स्तूपों के जंगलों वेदिकाओं एवं तोरणों में पत्थरों को काट-काट कर बहुत सी मूर्तियाँ बनायी गई है।

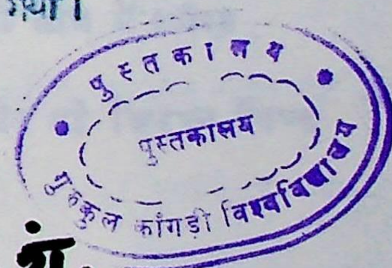
महात्मा बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन तोरण द्वारा एवं वेदिकाओं पर अंकित किया गया। यद्यपि अधिकांश स्तूप अब नष्ट हो चुके है किन्तु जो पूर्ण या अपूर्ण रूप से उपलब्ध है, उनमें वास्तु कला का इतिहास मात्र ही नहीं अपितु तत्कालीन सांस्कृतिक इतिहास का भी अवलोकन होता है। भरहुत स्तूप में चन्द्रायती महाकोका, देवता, सुदर्शनायक्षी जैसी सुन्दर स्त्री मूर्तिया की रचना की गई है। जिनमें गात्र-यष्टि, केश विन्यास, आभूषणों एवं वस्त्रों द्वारा सौन्दर्य विधान का अच्छा विकास मिलता है। इसी के साथ - साथ शुंगकालीन कला में यह विशेषता है कि उसमें सैकड़ों मार्गशीलोक के प्राणवन्त जीवन को अभिव्यक्त होने का स्थान मिला है।

शुंग कालीन स्तूपों में सांची भरहुत एवं बोधगया के स्तूप भी कहा जा सकता है।

सातवाहन कालीन स्तूपों में अमरावती एवं नागार्जुनी कोण्डा के स्तूप विशेष उल्लेखनीय है।

भरहुत स्तूप :-

भरहुत गाँव उचहरा स्टेशन से 6 मील उत्तर पूर्व में तथा सतना स्टेशन से 9 मील दक्षिण की तरफ है। सन 1873 ई॰ में अंग्रेज जनरल कनिंघम ने इस महान स्तूप का पता लगाया। जब कनिंघम ने उसे देखा तो लगभग पूरा स्तूप नष्ट हो चुका था, तथा कुछ आस पास के ग्राम वाली खोद कर ले जा चुके थे। जो कुछ शेष बचा था उसे खुदाई द्वारा निकाल कर संग्रहालयों में सुरक्षित रख दिया गया। तोरण द्वारों पर अंकित लेखों सेयह विदित होता है कि इसके निर्माण में धनी व्यापारीओं ने बहुत सहयोग दिया। अब स्थित स्थल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक केन्द्र था। ऐसा ज्ञात होता है कि इस स्तूप की ख्याति सुदूर तक विकीर्ण करने हेतु इसका निर्माण इस स्थान पर किया गया।



वास्तु रूपरेखा :-

भरहुत स्तूप का व्यास 68 फुटथा। पत्थर एवं कंकड़की नींव पर पक्की ईंटों द्वारा इस स्तूप का निमार्ण किया गया था। स्तूप के बाहर चारों ओर दीपमाला सुसज्जित करने के लिए लगभग 100 आले बने हुऐ थे। जिनमें 600 से अधिक दीप जगमगाते थे।

स्तूप के चारों ओर भूमि पर बनी हुई महावेदिका थी। जिसमें चार तोरण द्वार थे। वेदिका का आकार गोल था। इस वेदिका पर 80 स्तंभ लगे थे।



जिनकी ऊंचाई 7 फुट । इंच थी। दो स्तम्भों के बीच तीन - तीन आड़े पत्थर लगे थे, जिन्हें सुची नाम से जाना जाता था। कुल सुचियों की संख्या 228 थी। इस वेदिका के अन्दर अद्भुत मुर्तियां सुशोभित थी। इस वेदिका के प्रत्येक भाग पर बौद्ध धर्म के चित्र, अलंकरण एवं यात्रियों की मुर्तियां तथा देवी देवताओं की विभिन्न आकृतियां बनी थीतोरणों के शीर्ष पर पशु आकृतियां बनी थी। तोरणों के शीर्ष पर पशु आकृतियों का अंकन भी बहुत मनोरम हुआ है।

भरहुत के तोरणों की एक विशेषता बंडेरियों के दोनोंगोल सिरों पर बनी मगरमच्छ की आकृतियां है जिनके मुंह खुले हुये और पूंछ गोलाई में है। इन्हें"शिशुमार-शिर"कहा जाता था। सबसे ऊपर की बंडेरी या धरन के बीच में धर्मचक्र पुष्प की चौकी देकर लगाया गया था। इसके दोनो ओर दो त्रिरत्न चिन्ह लगाये थे।

तोरणद्वारों पर लगे खम्बों का अलंकरण औरों से भिन्न है। उन पर यक्ष - यक्षीणि देवता और राजाओं की मुर्तियां है जो चार दिशाओं के रक्षक समझे जाते थे, जैसे उत्तरी द्वार पर कुबेर यक्ष और चन्द्रायक्षी, दक्षिण द्वार पर नागराज चक्रवाक और सुकोमा देवता है। बाहरी कोनों के खम्भों पर तीन पंक्तियों में बुद्ध के जीवन दृश्य अंकित है, जैसे राजा अजातशत्रु द्वारा बुद्ध कादर्शन और नागराज एलापत्र द्वारा बोधिवृक्ष की वन्दना कोसल के राजा प्रसेनजित द्वारा धर्मचक्र आयतन

में आकर उसकी पुजा करना जंगली हाथियों द्वारा गौतम बुद्ध के बोधिवृक्ष अश्वत्थ और काश्यप बुद्ध के बोधिवृक्ष न्यग्रोध की पुजा आदि महास्तूप के वास्तु की कल्पना एक महान दिक् स्वस्तिक के रूप में की गयी थी।

प्रदक्षिणा पथ :-

स्तूप की उपासना करने के लिए प्रदक्षिणा पथ [illegible] का निर्माण किया गया था। चारों दिशाओं में घूम - घूमकर देव दर्शन करना पुजा की एक प्राचीनतम विधि की शिल्प के रूप में इसका निश्चित उदाहरण इस भरहुत के प्रदक्षिणा पथ में देखने योग्य है। परिक्रमा के बिना पूजा अधूरी मानी जाती थी।

प्रदक्षिणा पथ का निर्माण पत्थरों की बाढ़ [मिट्टी] पर बने नीव पर किया गया है। आनुमानिक तौर पर 7 फुट तक नीचे जाती थी। प्रदक्षिणा पथ को रोकने के लिए बाहर की तरफ पत्थर की गोत बाधी गयी थी जो उसे रोके रहता था। इसका कुछ भाग वेदिका स्तम्भ के बाहर की तरफ भी निकला हुआ था। भीतर एवं बाहर दोनों [illegible] भागों को मिलाकर इसका निर्माण किया गया था।

वेदिका के स्तम्भ :-

इसका निर्माण पत्थरों से हुआ था। इनका माप 7' 1" × 1' 10" × 1' ×2" था। प्राचीनतम काल में इन्हें अठ्ठासिक स्तम्भ कहा गया है। इसके मध्य में विभिन्न प्रकार के पशु - पक्षियों का अंकन किया गया है। तथा इनमें बौद्धधर्म से सम्बन्धित बहुत दृश्य हैं।

ब्राह्यवेदिका :-

पुरातत्व वेताओं के प्रयास से स्तूप के बाहर एक छोटी सी वेदिका के अवशेष भी प्राप्त हुऐ है। इनकी ऊंचाई 3' 3" थी। इसमें 240 स्तम्भ एवं 240 सुचीयाँ लगी थी जिनमें बहुत सी नष्ट हो गयी है। परन्तु कुछ बची हुई है, जिनके आधार पर कल्पना की जाती है।

हर्मिका :-

वैदिक मान्यता में जिस प्रकार देवों का वास स्थान द्युलोक में माना जाता है। उसी प्रकार बौद्ध परम्परा मेंदेवताओं का वास हर्मिका में माना गया था। इसके बीच में एक यष्टि लगाई जाती थी जिसके ऊपर तीन छत्र लगे होते थे। जिनकी तुलना वैदिक काल में वर्णित तीन लोकों {पृथ्वी, आकाश, पाताल} से की जा सकती है।

डा॰वासुदेव ने लिखा है:-

"महापुरुष के रूप में प्रत्येक स्तूप त्रिधा विभक्त अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के साथ सम्बन्धित है। ये तीन लोक प्रत्येक मनुष्य में है। इन्हें ही मान प्राण और भूत कहा जाता है।

तोरण द्वार:-
========

परिमण्डलाकार या वृत्ताकार महावेदिका के चारों दिशाओं में चार तोरण द्वार बनाये गये थे। प्रत्येक तोरण द्वार की रचना दो विशाल स्तम्भों से हुई थी। अधोभाग मध्यभाग एवं ऊर्ध्वभाग के विभिन्न दृश्यों की आकृतियां अपने में संजोय हुऐ है इनदृश्यों को देखनेसेज्ञात होता है कि तत्कालीन कल्पनाओं एवं मनोभावों का स्पष्ट चित्रण प्रस्तर में उकेर दिया गया था। वेदिका का पुरा उष्णीस भाग 330 फुट लम्बा था।

भरहुत वेदिका के बाड़ो और स्तम्भों पर अत्यन्त भव्य वृत्तों में विभिन्नअंकन हुऐ हैं, जिनमे कई जातक कथाओं की घटनाऐं प्रस्तुत करते हैं एक वृत्त में अश्वमुखी जातक की कथा उकेरी गई है। रूरु जातक वाली कथा विशेष संजीव है।

इसी प्रकार भरहुत की वेष्टनी पर एक सुन्दर ऐतिहासिक घटना -जेतवन खरीदने की खुदी है। बुद्ध को श्रावस्ती में जो उपवन आकर्षक लगा वह जेट का था। तथागत बुद्ध ने उसके सौन्दर्य का बखान किया । उपासक सेठ अनाथ पिण्डद ने उसे राजा जेत से खरीद कर संघ्य को दान देने की इच्छा प्रकट की। जेत से उपवन का मुल्य पुछा । जेत को उसे बेचना स्वीकार न होने से उसने उसका असंभव मूल्य मांगा - उतने स्वर्ण {सोने के सिक्के} जितने से मांगी हुई उपवन की भूमी ढक जाये। अनाथ पिंडद जब उतना धन देने को तत्पर हो गया तब जेत मुकर गया । अभियोग विचारार्थ न्याय सभा में पहुंचा और जेत को हार कर अपना मांगा मूल्य स्वीकार करना पड़ा।सेठ ने जेतवन की भूमि पाट कर मूल्य चुका दिया। यह घटना इतने महत्व की मानी गयी कि कलावंत ने उसे भरहुत की स्तूप - वेष्टनी पर उत्कीर्ण पर अमर कर दिया।

बैलगाडी सिक्कों से भरकर लायी जारही है, सिक्के भूमि पर बिछाये जा रहे हैं। इस प्रकार जीवन और साहित्य की कथाएं इन कलाकृतियों में उतार दी गई है। अनेक प्रतिको ने साहित्य में स्थान पाया है। जातक कथाओं का कला में निःसीम मूर्तन साहित्य और कला के इस घनिष्ठ संबंध और आदान प्रदान को व्यक्त करता है।

भरहुत के ऊपर निर्दिष्ट सारे दृश्यों वाले वेदिका खंड कलकत्ता के इण्डियन म्युजियम में सुरक्षित है।

शिल्प का परिचय:-
=============

भरहुत स्तूप की तोरण वेदिका पर लगभग 20 जातक दृश्य 6 ऐतिहासिक दृश्य 30 से ऊपर यक्ष - यक्षी , देवता , नागराजाओं आदि की खड़ी हुई बड़ी मुर्तियां तथा विभिन्न प्रकार के पुरा तथा वृक्षों की मुर्तियां है। इनमें बहुतों पर उनके नाम खुदे है सुचियों के लगभग अर्धसंख्यक मंडल और स्तम्भों के लगभग आधेआदे {चन्द्रक} कमल के फुल्लों से भरे हुऐ है जिनकी कल्पना अत्यन्त सुकुमार और सुन्दरहै इन का विवरण इस प्रकार है :-

देवयोनि:-
======

यक्ष, देवता, नाग एवं अप्सरा की आकृतियां:-
=====================================

चार तेरण द्वारों पर धृतराष्ट्र , विरूढक , विरूपाक्ष एवं वैश्रवण का अंकन है। पूर्व दिशा की तरफ धृतराष्ट्र एवं उसके अनुयायी का चित्र है। पश्चिम में विरूपाक्ष एवं नाग , उत्तर में वैश्रवण एवं यक्ष और दक्षिण दिशा की तरफ विरूढक एवं उसके अनुयायीओं का अंकन धर्म की प्राचीनता विविधता एवं गंभीरता को स्पष्ट करता है। अर्थववेद में ऐसा उल्लेख है कि पूर्व ,

पश्चिम , उत्तर एवं दक्षिण में क्रमशः अग्नि, वरुण, सोम एवं इन्द्र का अधिष्ठित रूप से वास होता था। इन देवताओं की उपासना लोक धर्म के रूप में प्रचलित थी। भगवती सुत्त एवं महापरिनिब्बान सुत्त में भी इस प्रकार का संकेत मिलता है। इन साक्ष्यों में "चातुर्महाराजिक"देवोपासना का विवेचन किया गया है। तत्कालीन कलाकारों ने चारों दिशाओं के रक्षक के रूप में इनका अंकन किया है।

देवियों [देवता वर्ग] के अंकन में सिरिमा, देवता, चुलकोका देवता एवं महाकोका का मुख्य स्थान है। सिरिमा देवता श्री लक्ष्मी की प्रतीक के रूप में थी। जिसका उल्लेख ऋग्वेद के श्री सुक्त में है। इसके अंकन की विशेषता इसकी स्तम्भ खड़ी हुई मुद्रा थी। यही प्राचीन मातृका देवी थी। इसका अंकन कमलपुष्प पर स्थानक या बैठी हुई मुद्रा में किया गया है।इनके पास में दोनों तरफ दो गजों की आकृतियां है। चुलकोका एवं महाकोका की आकृतियां स्त्री मुख सदृश हैं। यक्ष देवता के रूप में इनकी उपासना का रूप प्रचलित था।

नाग आकृतियों में प्रथम महत्वपूर्ण आकृति एरावत नागराज कीहै। एरापत नागराज को सहपरिवार बोधिवृक्ष की पूजा करते हुये दिखाया गया है। उसके मानविक मस्तक पर साप के फनों का आतोप है। स्तम्भ के पुतले पर वटवृक्ष के नीचे पांच फन वाले मुचलिन्द नागराज की मुर्ति उत्कीर्ण है। बौद्ध साहित्य के अनुसार मुचलिन्द ने महात्मा बुद्ध की रक्षा फन फैला कर की थी। दक्षिण तोरणद्वार के स्तम्भ पर नाग चक्रवाक की आकृति अंकित है।

देवयोनी के एक वर्ग में अप्सराओं का अंकन है जो नृत्य और संगीत में संलग्न है। अप्सराओं की मान्यता वैदिक युग में ही चल पड़ी थी। उर्वशी और घृताची का उल्लेख ऋग्वेद में पाया जाता है। भरहुत में अलम्बुसा, मिश्रकेशी, सुदर्शना और सुभद्रा इन चार अप्सराओं की मुर्तियां नामांकन सहित प्राप्त हुईहैं।

मानव वर्ग:-

राजा एवं धार्मिक पुरुषों की आकृतियां:-

राजाओं की आकृतियों में

अजातशत्रु एवं प्रसेनजित का अंकन है। रथ पर बैठे हुए कोसल के राजा

प्रसेनजित बुद्ध की वन्दना करते हुये दिखाये गये हैं। इसी दृश्य में

प्रसेनजित श्रावस्ती में बनायी गई पुण्यशाला का भी अंकन हैएक अन्य

दृश्य में हाथी पर बैठे हुऐ राजा अजातशत्रु लम्बे जुलूस के आगे आते हुऐ

दिखाये गये हैं। राजा हाथी से उतर कर प्रार्थना करते हुऐ दिखाये गये

हैं। मूर्ति पर लिखे गये अक्षर इस प्रकार हैं:-

"अजातशत्रु भगवतो वंदते"।

धार्मिक पुरुषों के अंकन में वल्कलधारी जटिल परिव्राजक अपनी

पर्णशालाओं के आगे बैठे हुऐ और अग्निहोत्र करते हुऐ दिखाऐ गये हैं।

दीर्घतपसी नामक परिव्राजक जिसके मस्तक पर जटाऐ हैं, स्थिर आसन

पर बैठा हुआ अपने शिष्यों को वेदाध्ययन करा रहा है। भरहुत के

शिल्पीओं में मानवीय आकृति और आश्रमवासी परिव्राजकों को अंकित

करने की पुरी क्षमता थी, यदि वे चाहते तो महात्मा बुद्ध की मानवीय

आकृति भी बना सकते थे। परन्तु शायद उन्होंने मर्यादा का ऐसा नहीं किया।

पशुआकृतियां:-

पशुओं की आकृतियाँ दो प्रकार की हैं:- एक स्वाभाविक और दूसरी काल्पनिक जैसे सपक्ष या आकाशचारी अश्व, सपक्ष सिंह, सपक्ष व्याल, मगरमच्छ, मछली की पुंछ के साथ मगर की आकृति आदि। इसके अतिरिक्त चौदह प्रकार के पक्षी , सर्प , मकर , कच्छप , गोधा , और मैंढक आदि। चतुष्पदों में हाथी , सिंह , अश्व , गैंड़ा, जंगली बकरी , वृष , मृग , भेड़िया , बन्दर , बिल्ली , कुत्ता , भेड़ , खरगोश , गिलहरी आदि का मनोरम अंकन है। पक्षियों में मोर , हंस , तोता , मुर्गा , जंगली बत्तख एवं बटेर आदि इन पशु - पक्षियों की आकृतियां बहुत ही मनोरम सुन्दर एवं प्रभावशाली है।

मनोरंजन के दृश्य:-

हास्य पूर्ण दृश्यों में बन्दर , हाथी और मनुष्य तीनों एक दूसरे के साथ मिलकर विचित्र हास्यपूर्ण दृश्यों की शोभा बड़ा रहे हैं।

एक पुल्ले के घेरे में एक महायक्ष छोटे मुढ़े पर बैठा है। उसके सिर पर भारी पगड़ी है , और चेहरा गुलमुच्छों से भरा हुआ है। कुछ बन्दर कहीं से एक बड़ी सड़सी ले आये हैं, जिसे एक हाथी झटका देकर खींच रहा है , और उससे महाभुत यक्ष की नाक का बाल उखड़ा जा रहा है। दो दृश्य ऐसे हैं जिनमें कुछ बन्दर जंगली हाथी को रस्सी से बाधकर हंसी खुशी ले जा रहे हैं। एक अन्य दृश्य में एक महा सामुद्रिक जन्तु मनुष्यों से भरी नाव को अपने जबडों से चबा रहा है, और वे सभी रक्षा के लिए पुकार रहे हैं।

पुजा प्रतिकों का अंकन:-

भरहुत में बुद्ध की मुर्ति कहीभी प्राप्त नहीं हुई परन्तु बोधिवृक्ष , स्तम्भ चरण पादुका , चुड़ी , उष्णीष एवं त्रिरत्न आदि बौद्ध चिन्हों की पुजा के अनेक दृश्य हैं।

ये प्रतीक चिन्ह तीन प्रकार के होते थे:-

1· शारीरिक:- जैसे बुद्ध के शरीर की धातुएं अर्थात उनकी अस्थियां तथा भस्मी केश और कृतित नख।

2· उद्देशिक:- स्तूप आदि जो गौतम बुद्ध या पुर्व कालीन बुद्धों की स्मृति में बनाये जाते थे।

3. <u>पारिभोगिक</u> :- बुद्ध के नीजी व्यवहार में लाई गई वस्तुओं की पूजा के लिए निर्मित धार्मिक स्थान जैसे बोधिमंड जहाँ बुद्ध ने बैठकर बोधि प्राप्त की, भिक्षा पात्र, उनकी चुडा जिसके लिए देवों ने सुधर्मा सभा में चुडागह नामक उत्सव मनाया।

<u>जातक दृश्यों का अंकन:-</u>

बुद्ध के पुर्व जन्म की कथायें बड़ी लोकप्रिय थी। भरहुत तोरण द्वार पर लगभग चौबीस जातक दृश्यों का अंकन किया गया है। इनमें दसरथ जातक, गजसम जातक, नाग जातक, किन्नर जातक, हंस जातक, विदुर जातक उद जातक, छदन्तिय जातक, इसिसिगिय जातक एवं महाकपि जातक प्रमुख है। इसके अंकन में भावों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

<u>वृक्षों का अंकन</u> :- वनस्पति जगत के वट, उदुम्बर, पाताले, शाल एवं शिरास वृक्षों का अंकन गौतम बुद्ध की जीवन गाथाओं से सम्बद्ध है। वट वृक्ष को ही बोधिक्ष माना गया है। इसकी उपासना करते हुऐजंगली हाथीवों को दिखाया गया है। इन वृक्षों पर महात्मा बुद्ध कानामभी उल्लिखित है।

इन्हीं के साथ प्राचीनउद्यान क्रीड़ाओं का समूह दिखाया गया है , जिनमें पुतल कुसुमित वृक्षों के नीचे स्त्रियां विभिन्न प्रकार की क्रिड़ाऐं करती है जिन्हें उद्यान - क्रीडा कहा जाता था । इनमें से कुछ कुछ क्रीड़ाओं के ये नाम थे शालमंजिका , अशोकपुष्पप्रचायिका आदि ।

अलंकरण चिन्ह:-

भरहुत स्तूप के अलंकरण में पुष्पों के अंकन का भी प्रयोग किया गया है । { पदममाला } , { पदमपुष्प } , { पदमकलिका } और { पदमपत्रों } को विशेष स्थान दिया गया है । स्तम्भ सुची और उष्णीसों पर कमल के पुत्तों की पंक्तियां दिखाई गई है , जिनके कारण इस प्रकार की वेदिकाकी संज्ञा पद्मवर वेदिका हो गई है । इस अलंकरण का संकेत देवताओं के लिए सहस्र पुष्पों

की माला समर्पित करना था , जिसे किन्जल्किनी भी कहा जाता था ।
कही पर मदिरा से भरे पनसफल का अंकन है तो कहीं आम्र फलों का
अंकन है । साहित्यिक साक्ष्यों मे इसका विवरण प्राप्त होता है।
परिपेक्ष्य में महावण्णी जातक रामायण का किष्कन्धा कान्ड एवं
महाभारत का भीष्म पर्व देखने योग्य है । भरहुत स्तूप में वट
प्रदान करने वाली कल्पलताओं काभी चित्रण है । इनमें कान के
फुल्ले , मोतियों का तिलहड़ाचार , मेखला , नूपुर , प्राकार ,
व प्रकुण्डल एवं त्रिरत्नों का हारपदक मुख्य है । डा॰ आनन्द
कुमार स्वामी एवं कनिंघम महोदय ने व्यक्त किया है कि भरहुत
स्तूप में तोरण द्वार पर स्तूप चक्र , गजलक्ष्मी पूर्णकुम्भ , सिंह पंक्ति ,
द्विभूमिक देव प्रासादों का अंकन एक नई दिशा नहीं अपितु वैदिक
मूल से सम्बद्ध है ।

स्तूप का काल :-

भरहुत स्तूप का काल कनिंघम ने ने अशोक
कालीन अभिलेखों की लिपि एवं तोरण पर { उल्लिखित }

उट्टंकित लिपि में साम्यता स्थापित करते हुये दो सौ पचास शती ई॰ पू॰ से दो सौ शती ई॰ पू॰ के मध्य निर्धारित किया गया है। डा॰ वासुदेव ने इसकी विधि 180 ई॰ पू॰ से 150 ई॰ पू॰ के मध्य निर्धारित की है। इनका कथन है कि मूल स्तूप का निर्माण अशोक के काल में हुआ था।

परन्तु वेदिका एवं तोरण द्वारों का विकास शुंग काल में सम्पन्न हुआ। इसका प्रमाण स्तूप के पूर्वी तोरण पर उत्कीर्ण एक लेख है, जिसमें शुंग राजा धनभुति का उल्लेख है।

यह अभिलेख इस प्रकार है :-

1॰ सुगनं रजे रामो गागीपुतस विसदेवस-

2॰ पुतेन गोतिपुतस अगरजसपुतेन

3॰ वाछिपुतेन धनभुतिन कारितं तोरणं।

4॰ सिलकंमत च उपंन ॥

इस मत में मुलाधार समाहित है, इसलिए यह तिथि मानना न्याय संगत है ॥

इसी राजा धनभुति ने मथुरा में भी तोरण युक्त स्तूप और एक रत्नगृह का निर्माण कराया था। धनभुति का समय 180-150 ई॰पू॰ के लगभग है ॥

सांची स्तूप :-

स्तूपों की श्रृंखला में भोपाल के निकट स्थित सांची स्तूप समूह महत्वपूर्ण है । प्राचीन भारत में इसके निकट का स्थान विदिशा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक केन्द्र था । प्राचीन समय में दशार्णदेश की यह राजधानी थी । यहां पर स्तूप का निर्माण क्यों किया गया ? इसका समाधान बौद्ध साहित्य में है । महावंश का कथन है कि अशोक उज्जयिनि जाते समय तक रूके थे । यहा पर उन्होंने एक व्यापारी की पुत्री जिसका नाम देवी था, से विवाह किया । महेन्द्र और संघमित्रा उसी रानी के पुत्र थे । गूढ़चिन्तनोपरान्त यह ज्ञात होता है कि अशोक इस स्थान से प्रभावित हुऐ होंगे इसीलिए यहां पर स्तूप का निर्माण सम्भव हुआ । सांची में और इसके आस पास लगभग 61 स्तूप है । जो निम्न प्रकार से है :-

सोनरी में 8 स्तूप, सतधारा में 5 स्तूप, अंधेर में 3, भोजपुर में 37, सांची में 8.

साँची के स्तूपों में सं० 1, 2, 3 विशेष महत्व के है । इनमें स्तूप संख्या तीन में गौतम बुद्ध के दो शिष्यों सारिपुत्र और महामोदगल्यायन के अस्थि अवशेष और फूल सुरक्षित है ।

महास्तूप संख्या ।

ईंटों से निर्मित यह स्तूप अशोक के समय में बना था शुंगकाल में इसी स्तूप पर प्रस्तर - आच्छादन किया गया। इसका व्यास 126 फुट और उंचाई 54 फुट है । इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें चूने के बिना चिनाई का प्रयोग किया गया है ।

कलाशास्त्र वेता डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है :-

"भारत वर्ष में यह चुने के बिना हुई चिनाई का पहला नमूना है।"

महास्तूप की रूपरेखा :-

साँची का महास्तूप आकार में अर्धचन्द्रमा के समान या उल्टे कटोरे की आकृति जैसा है । इसे त्रिमेधि स्तूप कहा गया है। त्रिमेधि कहने का अर्थ यह है कि यह तीन रूप में विभाजित है। अधोभाग की मेधि, और हर्मिका की मेधि , मध्य भाग की मेधि, से इसे सुसज्जित किया गया है। भूमितल पर चारों ओर पत्थर का फर्श बनाया गया था। वहीं पर स्तूप की पहली मेधी थी। उसी पर महावेदिका का निर्माण किया गया था।

वेदिकाकी उंचाई ।। फुट है। इसके अन्दर किसी भी तरह का कोई अलंकरण नहीं है। यह वेदिका देखने में इंगलैड़ की स्टोन हैज की भांति विशाल है। स्तम्भ सूची एवं उष्णीषों पर किसी प्रकार का कोई अंकन नहीं किया गया है। वेदिका अलंकरण से रहित सादी बनाई गयी थी। दो - दो फीट की दूरी पर बने प्रत्येक स्तम्भ की उंचाई ९ फीट है। स्तम्भ के शीर्ष पर वृत्ताकार उष्णीष का निर्माण हुआ है। निर्माण शैली में काष्ठ कला की विशेषताएं हैं।

द्वार तोरण और वेदिका के निर्माण में बहुत संख्या में जनता ने दान दिया। इस प्रकार के दान से सम्बन्धित बहुत से दान सूचक लेख वेदिका पर खुदे हैं। उपलब्ध कुल लेखों की संख्या इस समय 827 है।

पूर्वी तोरण पर गुप्त संवत 93 {412 - 13 ई॰} के एक लेख में कहा गया है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने मालवा पर विजय की।

द्वार तोरण :-

महास्तूप के द्वार तोरण की सबसे अधिक विशेषता उसके चार तोरण द्वार हैं। कालक्रम के अनुसार यह कहा जा सकता है कि सबसे पहले दक्षिण तोरण द्वार का निर्माण हुआ था उसके बाद उत्तर दिशा वाला तोरण द्वार

बनाया गया जो सबसे अधिक सुरक्षित है। इनके बाद क्रमश: पूर्वी एवं पश्चिमी तोरण द्वारों की रचना हुई होगी । प्रत्येक द्वार में दो स्तम्भों का प्रयोग है, जिनकी ऊंचाई 34 फीट है। इन पर शिल्प का अंकन है। शिल्प के अन्तर्गत गौतम बुद्ध की घटनाएं, यक्ष प्रतिमाएं, पशुओं की प्रतिमाएं, एवं पुष्प और पत्तियों का अंकन बहुत ही सुन्दर एवं मनोरम ढंग से हुआ है।

दक्षिणी तोरण द्वार :-

प्रारम्भिक समय का बना दक्षिण तोरण द्वार है। इसमें तीन वड़ेरियां बनी हुई है। सबसे ऊपर की धरन के अगले भाग पर मध्य में कमल वन में खड़ी हुई देवी लक्ष्मी की मूर्ति है। लक्ष्मी के पास में दो हाथी घड़ा लिए हुऐ दिखाये गये हैं। प्रसिद्ध कला शास्त्र वेता फूसे ने इसे मायादेवी का प्रतीक माना है। परन्तु डा॰ शरण अग्रवाल ने इसे सिरिमा या लक्ष्मी मानना अधिक युक्ति संगत बताया है। इसी द्वार पर विरूदक का अंकन है। वड़ेरियों के उपशीर्षकों के दाहिनी और बाईं ओर पशुओं के चित्रों का अंकन हुआ है जैसे यसंघात, मृगसंघात एवं गजसंघात आदि ये चित्र कला की उत्कृष्टता को प्रदर्शित करते हैं। पीछे की तरफ तीन वडेरियां हैं। प्रथम वडेरी पर मध्य भाग की तरफ चार वृक्षों से घिरे हुऐ तीन स्तूप हैं। इनके नीचे देव और मनुष्यों

से पुजा किये जाते हुये चार बोधि मण्ड है। स्तूप के अण्डाकार भाग पर सातकर्णि युग के कलाकार आनन्द का नाम अंकित है। मध्य बड़ेरी पर गौतम बुद्ध के जन्म की घटना का अंकन है जो छछन्त जातक की कथा से मिलता जुलता है। अधा भाग की बड़ेरी पर सात क्षत्रिय गणराज्यों के उस संघर्ष का विवरण है जो बुद्धावशेष के कारण हुआ था। तीनों तीनों बड़ेरियों के शीर्ष भाग परचक्रव्युहका अलंकरण है। जो स्तूप की शोभा को अत्यधिक बढ़ा रहा है।

बायें स्तम्भ के आगे की तरफ अशोक रथ पर बैठा हुआ अपने सैनिकों के साथ दिखाया गया है। इसी स्तम्भ पर बीच के दृश्य में अशोक अपनी दो रानीयों के साथ, बुद्ध का चुडामह, 33 देवताओं द्वारा बुद्ध के केशों का पुजन, एवं मुख भाग पर गजा रोही अश्वारोही एवं पैदल बुद्ध का चित्रण है। स्तम्भ के पश्चिमी भाग पर वस्त्र, आभुषण, एवं तीन मिथुन दिखाये गये हैं। जिनका अर्थ अभी तक अज्ञात रहा है। दायें स्तम्भ पर नागराज एवं चार नागियों एवं बोधिवृक्ष का दृश्य है, जो अतीव उत्कृष्ट नमूना प्रतीत होता है।

सर्वाधिक महत्वपुर्ण बात यह है कि दक्षिण द्वार पर चार सिंहों का अंकन है। दो सिंह पीठ सटा का आगे मुंह किये हुऐ है और दो मुंह पीछे किये हुये प्रदर्शित है।

उत्तरी तोरण द्वार:-
==================

इस तोरण द्वार के सबसे नीचे की तरफ वेस्सन्तर जातक की कथा उत्कीर्ण है। यह द्वार सबसे सुरक्षित दशा में है। इस द्वार की अधिकतर मुर्तियां और अलंकरण अच्छी दशा में है। सबसे उपर की बड़ेरी पर सात मुर्तियां थी- बीच में धर्मचक्र दोनो तरफ एक यक्ष, त्रिरत्न एवं सिंह का प्रदर्शन है। चक्र पुजा का अदभुत दृश्य दिखाया गया है। किनारो की तरफ गज लक्ष्मी का अंकन है। इसमें लक्ष्मी पदमासन पर बैठी हुई है। और हाथी सुनाल कमल के ऊपर खड़े हैं। ऊपर और बीच की बड़ेरी के पृष्ठ भाग में छदन्त जातक के दृश्य है। बायें स्तम्भ के ऊपर भी विभिन्न प्रकार के शिल्पों का अंकन हुआ है। स्तम्भ के भीतरी कक्ष में इन्द्रशैल गुफा में बैठे हुऐ बुद्ध के दर्शन के लिए इन्द्र का आगमन, ऊपरी भाग में कृत्रिम पर्वत गुफा का अंकन है।

नीचे के दृश्य में इन्द्र अपने साथियों के साथ पुजा कर रहा है। स्तम्भ के बाहरी भाग पर सोने की मालायें लटकाई जाती थी, जिससे उस यरर्हट की हेममालिनी संज्ञा भी थी। इन्हे देवी श्री लक्ष्मी का प्रत्यक्ष रूप माना जाता था। स्त्रियों के गले में मांगलिक माला का प्रदर्शन है। मांगलिक प्रतिकों में कुल 24 चिन्ह है। जिनमें वैजयन्ती, मीन युगल श्रीवत्स, कमल, कल्पवृक्ष, पुष्पध्वज, एवं वज्र तथा दो अन्य चिन्ह है। उत्तरी द्वार के दाहिने स्तम्भ के अग्र भाग पर 33 देवों के स्वर्ग से बुद्ध का अवतरण दिखाया गया है। भीतरी पक्ष के ऊपरी दृश्य में मल्लों द्वारा बुद्ध की धातुओं पर स्तूप का निर्माण अंकित है। दूसरे दृश्य में बन्दर बुद्ध को मधुपात्र दे रहे है। इसके साथ ही लक्ष्मी एवं वज्रध्वज का अंकन भी बहुत ही सुन्दर हुआ है।

पुर्वी दिशा का तोरण द्वार :-

उत्तरी तोरण की भान्ति पुर्वी तोरण भी अपने मूल स्थान पर है। इस पर अंकित अभिकल्पों की कला पहले की अपेक्षा अधिक विकसित है। मध्य की बड़ेरी पर महाभिनिष्क्रमण का दृश्य है। अशोक एवं महारानी तिष्य रक्षिता का अंकन तीसरी बड़ेरी पर है। बोधिवृक्ष पशुओं के द्वारा उसकी पुजा, हाथीयों द्वारा स्तूप पुजा, पुर्णघट, पशु शीर्षक, इन्द्र और ब्राह्मा का बुद्ध के दर्शन करने के लिए आने का अंकन इन पर प्राप्त होता है।

महात्मा बुद्ध की समिधा, अग्नि एवं आहुति सम्बन्धि दृश्यों का चमत्कारिक रूप प्रदर्शित है। छः कामावचर देवों का अंकन बहुत ही सुन्दर ढ़ंग से किया गया है। पीछे की तरफ महात्मा बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति के दृश्य है। इनके चारों तरफ शिष्य एवं आकाश में विचरण करने वाली देव शक्तियों के दृश्य है।

पश्चिमी तोरण द्वार :-

सात मानुषी बुद्ध का अंकन अन्य तोरणों की भांति यहां पर भी प्राप्त होता है। मध्य बड़ेरी पर धर्मचक्र का स्थापन है और चारों तरफ हिरन दिखाये गये हैं। नीचली भाग पर गजराज द्वारा बोधिवृक्षोपासना का दृश्य है।

पीछे की तरफ मल्ल गण के सेनापति द्वारा अस्थि ले जाने का दृश्य है। धातु युद्ध जो अन्य तोरणद्वारों पर है, यहां भी उपलब्ध होता है। निचली बड़ेरी पर मार धर्षण का दृश्य है। बायें स्तम्भ के अन्दर की तरफ चार मिथुनों का दृश्य है। भीतर की तरफ श्याम जातक का दृश्य है। मुचलिन्द अपने फन द्वारा वर्षा से बुद्ध की रक्षा करता हुआ दिखाया गया है। दाहिने स्तम्भ पर महाकपि जातक का दृश्य है। भीतरी भाग में सम्बोधि का दृश्य बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है।

हाथी, सिंह, हिरन, तथा अनेक जंगली पशु पक्षीयों की आकृत्तियों का अंकन भी बहुत मात्रा में हुआ है। सांची में भरहुत की अपेक्षा जातकों की संख्या कम है। शीर्ष भाग में पशु संघाट की कल्पना भरहुत से अधिक है। श्री लक्ष्मी पुजा को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। मार्शल ने लिखा है कि सांची के कलाकारों के भी कई स्तर थे। जैसा की उनकी कला शैलीयों से ज्ञात होता है कि इनमें कुछ दृश्य सांसारिक एवं विषय वासना से सम्बन्धित है।

हर्मिका :-

अशोक के समय में महास्तूप का निर्माण होने के बाद उसके अन्दर हर्मिका बनाई गयी। सांची के तीनों स्तूपों में इस प्रकार की हर्मिका है। छत्र - यष्टि की स्थापना एक बड़ी पाषाण मंजुषा के बीच में की गई, जिसके गर्भ में धातुओं का निधान किया गया। धातु गर्भ मंजुषा के विधान या ढक्कन का व्यास 5 फुट 9 इंच और मोटाई 18 इंच थी। वेदिका की प्रत्येक दिशा 21 फुट 26 इंच माप में बनी थी।यह कला धारिकता का उत्कृट उदाहरण है।

-47-

छत्र :-

हर्मिका के शीर्ष पर एक छत्र बना था । जिसके कई टुकड़े मलवे में पाये गये । शिल्प एवं निपुणता का अच्छा प्रदर्शन यहाँ किया गया है ।

मार्शल के अनुसार किसी भी देश के शिल्प कर्म में इससे बढ़कर उत्तम काम नहीं पाया गया ।

-48-

साँची स्तूप संख्या ॥

पहाड़ी के पश्चिमी ढलान पर स्थित स्तूप संख्या दो शुंग काल की वेदिका से घिरा है। यह वेदिका भरहुत और बोधगया की वेदिकाओं की समकालीन है और इस प्रकार इसका समय दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य माना जाता है। इस वेदिका में कमल, गज, लक्ष्मी और स्तूप आदि के इतने विभिन्न प्रकार के रूपादि उकेरे गये हैं कि उस समय के मूर्तिकारों की कल्पना पर आश्चर्य होता है। इसमें कई हजार प्रकार के आकार हैं। लेकिन इसमें आश्चर्य यह है कि एक ही तरफ के चित्रों का अंकन दूसरी तरफ नहीं उकेरा गया है। कहीं मकरो के मुंह से कमल की लताऐं निकलती दिखाई गई हैं तो कहीं पर गोल या अर्धगोलाकर प्रकारों में कमल के रूप दिखाये गये हैं।

इस स्तूप में तोरणद्वार नहीं है लेकिन दूसरी परिक्रमा है। स्तूप ऊपर से टूट चुका है। लेकिन जब इसका निर्माण किया गया था तो इसमें हर्मिका दण्ड और छत्र आदि सभी कुछ है। इस स्तूप में धातु या अस्थियां रखने की पिटारी में सेलखरी की चार छोटी - छोटी डिबियां मिली हैं।

-49-

इनमें विनय के आचार्य अर्हत् काश्यप, अर्हत्‌विजयत्, मज्झिम, हरितपुत्र और गोविपुत्र के साथ मोगली पुत्र तिष्य की अस्थियाँ भी मिली हैं। सम्राट अशोक के शासन काल में पाटलिपुत्र के अशोकाराम बिहार में बौद्धों का तिसरा महासम्मेलन हुआ था। इस तृतीय संगीति की अध्यक्षता मोगलीपुत्र तिष्य ने की थी। इस महासम्मेलन के बाद महादेव, मध्यान्तिक, रक्षित और धर्मरक्षित आदि विद्वान बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए गन्धार, कश्मीर, महिस मंडल और अपरान्त आदिप्रदेशोंमें भेजे गये थे। गत शताब्दी में सन् 1819 ई॰ में जब इसको कैप्टन फैल ने देखा था, तब यह स्तूप अपने मूल स्वरूप में मौजूद था। लेकिन सन् 1882 ई॰ में कैप्टन जानसन ने इसे खुलवाया। उसके बाद सरअलैक्जेण्डर कनिंघम ने अस्थि-शेषों की खोज की। इन खुदाइयों के कारण ही स्तूप का ऊपरी भाग टूट गया था।

सर जार्न मार्शल ने लिखा है:- "यह स्तूप खोला गया और कैप्टेन जानसन द्वारा सन 1822 में आधा नष्ट कर दिया गया। लेकिन शेष कार्य जनरल कनिंघम के लिए बाकि रहा। उन्होंने धातु स्मारकों की खोज के लिए सन् 1851 ई॰ में इस काम को जारी किया और दुर्भाग्यवश उनके द्वारा ही स्तूप के विनाश का कार्य पूरा हुआ"

-50-

स्तूप संख्यादो की वेदिका में मुर्तिकारों ने कमल के अलावा हाथी को भी विविध रूपों में उत्कीर्ण किया है। कहीं वे नाल सहित कमल को तोड़ते हुऐ दिखाई दे रहे हैं, तो कहीं पर अपनी सूंड़ पर पानी भरकर उसे अपनी पीठ पर डालते हुऐ दिखाई दे रहे हैं। कही पर अपनी सुंडों में जल कलश लिऐ गज लक्ष्मी का अभिषेक करते दिखलाये गये हैं।3 इस स्तूप की वेदिका के एक खम्भे में एक हाथी अपनी सूंड में कमल की की बेल लपेटे खड़ा है। इसमें फुलों के स्थान पर आभुषण लटकते हुऐ दिखलाई दे रहे हैं। कहीं पर कल्प - बल्लरी के चित्र हैं जो इच्छा मात्र से सब मनोरथों को पूरा कर देती थी।

इस स्तूप को वेदिका के स्तम्भों पर सिंहों काभी विविध प्रकार से अंकन हुआ है। इनमें से कुछ पर ईरानी कला का प्रभाव है। ऐसे सिंह जिनके पंख हैं, या फिर ऐसे सिंह जिनका शरीर शेर का और मुंह बाज का या तोते का है, अंकित है। एक चित्र में एक सिंह का मुख भाग मनुष्य का है, उसके सिर पर लम्बा मुकुट है और नीचे लम्बी दाढ़ी है विशेष दर्शनीय है। प्रवेश द्वार के एक स्तम्भ पर एक विदेशी सिंह लड़ता हुआ दिखलाया गया है का रोचक अंकन हुआ है।

स्पष्ट है कि इस प्रकार के दृश्यो से धर्म के दार्शनिक पक्ष का कोई सम्बन्ध नहीं है। सारे अंकन स्वतन्त्र हैं। कही भी कथात्मक शैली को नहीं अपनाया गया है। एक खम्भे पर एक राजा, दो रानीयां और तीन पार्षद है जो छत्र और चमर लिए है। नीचे के दृश्य में राजा रथ में और मन्त्री हाथी पर बैठकर जा रहे हैं। इसमें अशोक बोधिवृक्ष के दर्शनार्थ बोधगया यात्रा का दृश्य है जैसा कि महा स्तूप के पश्चिमी द्वार पर भी अंकित है।

साँची स्तूप संख्या III

पहाड़ी में चौरस भाग पर स्तूप संख्या एक के निकट उत्तर - पूर्व में लगभग 150 फुट का एक छोटा स्तूप है। इसे स्तूप संख्या तीन का नाम दिया गया है। इस स्तूप की छत्र के साथ ऊंचाई लगभग 35 फुट है। और इसका व्यास लगभग 50 फुट है। इस स्तूप में केवल एक तोरणद्वार है। इस तोरणद्वार के चौपहलु खम्भे भी अपने उपर तीन बड़ेरीयों या धरने का भार लादे खड़े हैं। इन बड़ेरियों के सामने और पीछे के भाग में भी अनेक प्रस्तर दृश्य हैं। इस स्तूप में दोहरी मेधि है, जिस तक पहुंचने के लिए सिढ़ियां हैं। इस मेधि या परिक्रमा के ऊपर खड़े होकर बड़ेरियों का पिछला भाग भी अच्छी तरह दिखलाई पड़ता है। इस स्तूप की रचना का समय ईसा पूर्व माना जाता है। तोरणद्वार इसके लगभग 25 वर्ष पश्चात् बना। इस स्तूप को भी पहले एक वेदिका घेरे हुये थी। जो अब टूट चुकी है।

पिछली शताब्दी में कनिंघम को इस स्तूप में से दो पत्थर की पिटारियां मिली थी। इन पिटारियों में पाये गये लेख के अनुसार उनमें भगवान बुद्ध के

दो प्रिय शिष्य सारिपुत्र और महा मौद्गल्यायन की अस्थियां सुरक्षित थी। इसी कारण स्तूप संख्या तीन महत्वपूर्ण समझा जाता है। बुद्ध देव के यह दोनो शिष्य उनके महानिर्वाण से पहले ही शरीर त्याग चुके थे। सारिपुत्र का निधन 543 ईसा - पूर्व मे हुआ था। पिटारियों के अन्दर सफेद सेलखड़ी की मंजुषाएं रखी पाई गई थी, और जैसा कि बौद्ध धर्म मे रिवाज था। उसमें मणि, वैदूर्य और मानके रखे गये थे। स्तूप संख्या तीन में मिली यह धातुएं पिछली शताब्दी में इंग्लैड़ भेज दी गई थी, परन्तु भारत और श्री लंका के मिले जुले प्रयास से उन्हें दोबारा भारत लाया गया।

सांची के स्तूप संख्या एक का अंड ठोस उल्टा कटोरे जैसा आधा गोल है जबकि इस स्तूप का अंड घण्टाकर है। उसके बाद सादी सुचियों और खम्बों से देवलोक की प्रतिक हर्मिका की एक भुजा साढ़े चार फुट है। इसके मध्य में एक गोल दण्ड है, जिसे यष्टि कहा गया है। इस यष्टि के अन्दर गोलाकार छत्र है। इस छत्र का व्यास साढ़े तीन फुट है।

इस स्तूप का तोरणद्वार दक्षिणी दिशामें है इसमें दो चौपाहल स्तम्भ है। इन स्तम्भों में से प्रत्येक पर चार - चार कुम्भाण्डों की आकृतियां हैं। उनके अन्दर तिहरी बड़ेरियों का पिंजर है।

पहली बड़ेरी आगे का भाग :-
=======================

इस बड़ेरी पर बल्लरों { बेल } का अंकन बहुत ही मनोरम किया गया है, और उसके बीच में छ: पुरुष मुर्तियां उकेरी गयी हैं। इन आकृतियों में वह आकर्षण नहीं है जो कि स्तूप संख्या एक की आकृतियों में है। इस बड़ेरी के दोनों कोनों पर बैलों की जोड़ी , वृषभ संघात और कमलों के बीच में विहार करते हुऐयक्ष दिखलाये गये हैं। इस तोरणद्वार की तीनों बड़ेरियों के सिरे भी पुस्तक के पृष्ठ जैसे मुड़े हुऐ दिखलाये गये हैं।

दूसरी बड़ेरी आगे का भाग :-
=======================

इस बड़ेरी पर स्तूप और बोधिवृक्ष के माध्यम से बुद्ध की पुजा का दृश्य आंका गया है। इस बड़ेरी के एक दृश्य में घोड़ों की जोड़ी का सुन्दर

अंकन हुआ है। एक दृश्य में दो पशु विपरीत दिशाओं में मुंह किये हुये इस प्रकार दिखलाये गये है कि एक का शरीर दुसरे के शरीर को पुरी तरह से ढक ले केवल मुंह और आगे का कुछ भाग खुला रहे। इनके ऊपर सवार भी दिखलाये गये है, परन्तु वे गर्दन की ओर झुके बैठे हैं।

दुसरी और तीसरी बड़ेरीके बीच में वर्गाकार खण्डों में चक्र और वृक्षपुजा के दृश्य हैं। चक्र को एक वेदी के अन्दर प्रतिष्ठीत किया है। ऊपर आकाश में विचरण करने वाले किन्नर है, जिनका आधा शरीर पक्षी का है, और नीचे उपासक दिखाये गये हैं।

तीसरी बड़ेरी :-
============

नीचे की तीसरी बड़ेरी पर आगे की ओर उकेरा गया यह दृश्य अपने ढंग का अनुठा है। इसमें एक राजपुरूष राजा अपनी रानीयों के साथ एक आसन पर बैठा हुआ दिखलाया गया है। पीछे की तरफ पहाड़ और वन है। उसमें अनेक ऊंचे वर्ग के पुरूष या देवताओं का सुन्दर अंकन है। नदी

-56-

के तट पर एक सुन्दर मण्ड़प बनाया गया है। मार्शल ने इसे नन्दन कानन का अंकन मानते हुऐ नदी को "मन्दाकिनी" माना है। मण्डप के निकट एक पुरूष अपने हाथों में सप्ततंत्री वीणा लिए खड़ा है। इसे दिव्य गायक पंचशिख बतलाया गया है। कुछ अन्य विद्वान इसे नाग लोक का दृश्य मानते है। क्योंकि मण्ड़प के दोनों ओर नागराज अपनी रानीयों के साथ मनुष्य रूप में खड़े दिखलाई देते है। उनके सिर के अन्दर उनका चिन्ह नागफन है साथ के दोनों वर्गाकार खण्डों पर मगरों पर बैठे हुए देवता लोग हैं। उनके बाद कोनों पर सर्प दिखलाये गये हैं। जिनकी लम्बी पूछें बड़ेरियों के सिरों तक चली गयी है। मंड़प में एक ओर अश्वमुखी स्त्री दिखलाई गयी है। जातकों में भी पक्षी का उल्लेख हुआ है।

बड़ेरियों का पिछला भाग:-

सबसे ऊपर की बड़ेरी में स्तूप और बोधिवृक्ष की उपासना के दृश्य हैं। बड़ेरी के दोनों ओर सिहों की जोडीयां, सिंह -संघाट है।

तोरण द्वार की दूसरी बडेरी के पिछले भाग में कमल की वल्लरी दिखलाई गई है। वास्तव में कमल की बेल नहीं होती, वह तो अपनी नाल पर सरोवरों में खिलता है। कमल बेल की कल्पना शोभा के लिए की गई है।

तीसरी बड़ेरी में कुछ कुम्भाण्ड़ या बौने कमल बेल को थामे हुऐ दिखलाई गई है।

तोरण - द्वार के स्तम्भ :-

स्तूप संख्या तीन के तोरण द्वार के स्तम्भों पर बुद्धदेव के जीवन के प्रसंग या जातक कथाऐं नहीं उकेरी गयी। बल्कि इनके आयताकार टुकड़ों में स्तूप चक्र और बोधिवृक्ष आदि की उपासना के दृश्यों का अंकन है। लम्बे फलकों में एक या दो पंक्तियों में पांच या छ: उपासक खड़े दिखलाये गये हैं। एक फलक में नृत्य गान का दृश्य है, एक स्त्री नृत्य कर रही है और शेष तारा बजाकर उसे गीत और तान दे रही हैं। एक स्त्री की गोद में से बालक मचल कर अपने पिता की गोद में जाना चाहता है। स्तम्भों पर नीचे यक्ष दर्शन दे रहे हैं।

बोधगया :-

बोधगया वह स्थान है, जहाँ बुद्ध ने सम्बोधि प्राप्त की थी। यह गया से दक्षिण प्राचीन उरुविल्व गाम के स्थान पर है। यहीं पर ऋषि काश्यप का आश्रम और सुजाता का घर है। कहा जात है कि उपगुप्त ने अशोक को बताया था कि इसी स्थान पर महात्मा बुद्ध का सम्बोधि प्राप्त हुई थी। अशोक ने तब उसी जगह पर बोधिघर का निर्माण कराया। वह पीपल का वृक्ष था। पर उसे बोधिद्रुम या ज्ञान का वृक्ष कहा गया। उसके नीचे बुद्ध का आसन { बोधिमण्ड } था। बोधिमण्ड के चारों ओर निर्मित बोधिघर को महाबोधि - विहार की संज्ञा प्राप्त हुई, और कलान्तर में उसी के पास के बड़े बिहार को महाबोधि संघाराम कहा गया। वस्तुत : अशोक कालीन बोधिघर के चारों ओर कुछ हटकर एक पत्थर की वेदिका थी, जिसके बहुत से स्तम्भ और उष्णीष आज तक है। मूल बोधिघर अब सुरक्षित नहीं रहा पर उसकी आकृति भरहुत के वेदिका स्तम्भ पर मिली है। जिसके अनुसार यह स्तम्भों पर खड़ा हुआ मण्डप था।

बोधिघर के चारों ओर अशोक ने एक वेष्टिनी बनवाई थी, जिसकी चारों दिशाओं की लम्बाई258 फुट है। मूल में यह ईटों की थी जो अब भी नींव में लगी है, पर बाद में इसके स्तम्भ, सुची और उष्णीस सब पत्थर के कर दिऐ गये। इस पर उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि यह इंद्राग्निमित्र की रानी कुरंगी और ब्राह्मित्र की रानी नागदेवी का धार्मिक दान था इसमें 64 खम्भे थे, स्तम्भ की ऊंचाई 6 फुट 8 इंच चौड़ाई 12/14 इंच, उष्णीष 1 फुट 2 इंच, अधिष्ठान 2 फुट 2 इंच - इस प्रकार वेदिका की पूरी ऊंचाई कुल 10 फुट थी। इस पर उत्तर कुरु प्रदेश के कल्पवृक्ष और कल्पलाएं, जातक कथाएंऔरबुद्धके जीवन के ऐतिहासिक दृश्य है। इसके अलावा आसन पर बैठी हुई मिथुन मुर्ति, गज लक्ष्मी , बोधिवृक्ष की पुजा करते हुये भिक्षु, स्तम्भ पर लगे हुए धर्म चक्र की पुजा, त्रिरत्न, वृक्ष का देवी कमल वन में खड़ी हुई स्त्री की भव्य मुर्ति, गन्धर्वों के साथ इन्द्र द्वारा इन्द्रशैल गुफा में बुद्ध का दर्शन, जेतवन का दान, बोधिवृक्ष की पुजा करते हुऐ हस्ती समूह इत्यादि विशेष उल्लेखनीय है। बोधगया में जातकों की संख्या सीमित है।

-60-

पशुओं का अंकन बोधगया कीविशेषता है, यथा सपक्ष सिंह, सपक्ष अश्व, सपक्ष हस्ती, नर मच्छ, वृषभ, बकरे, मगरमच्छ, मृग, एवं बहुत से कल्पना जन्य पशु अंकित हैं। एक स्तम्भ पर गजमच्छ या जलेभ पर आरोहक पुरुष मुर्ति है। उसी स्तम्भ पर दूसरी मुर्ति सिंह रूपी मगरमच्छ की है। अन्य जलचर थलचर पशुओं की कल्पनाजन्य मुर्तियां उष्णीष पर अंकित है।

बोधगया के मन्दिर का कईबार संस्कार हुआ । इनमें गुप्त कालीन मन्दिर सबसे महत्वपूर्ण था जिसे लेख में वज्रासन स्थान पर निर्मित बृहद्गन्धकुटी-प्रासाद कहा है। इसका और भी परिवर्तन 1035 - 1079 ई॰ के मध्य में ब्रह्मदेश केधर्म यात्रियों ने किया।

चंक्रमण (पाली चकम) चैत्य :-

वज्रासन के समिप जहां बुद्ध भ्रमण करते थे, वह स्थान चंकम कहा गया कहा जाता है कि सम्बोधि प्राप्त करने के बाद सात दिन तक वे ध्यान में डुबे हुये और कुछ उधेड़बुन करते हुये इस स्थान पर टहलते रहे। वहीं पर बाद में टहलने का चबुतरा बना दिया गया, जो 53 फुट लम्बा, 3फुट ऊंचा और 6 इंच चौड़ा है। इसके दोनो ओर 11 स्तम्भ या खम्भों की

चौयियां हैं। जो चंकम की छत के लिऐ बाद में जोड़ी गयी।

एक चौकी पर पूर्णघट के मुख पर खड़ी हुई भव्य स्त्री मुर्ति या देवी श्री लक्ष्मी की मुर्ति मिली है। अत्यन्त प्राचीन काल से बौद्ध जनता में रत्नचक्रम चैत्य का बुद्ध के जीवन के सम्बन्ध में प्रतीकात्मक महत्व माना गया था।

अमरावती स्तूप :-

द्वितीया - एवं तृतीया शती में अमरावती का यह स्तूप अपने जिस पूर्ण स्तम्भ में था, विश्व की महान कलाकृतियों में स्थान पाने योग्य था। किन्तु इस स्तूप का पूर्ण स्वरूप अब समाप्त हो गया है। इस स्तूप के मूल स्थान पर अब प्राय: कुछनहीं बचा है। इसके जो अवशेष मद्रास, कलकत्ता, और लन्दन के संग्रहालयों में सुरक्षित है, उन्हें देखकर केवल उसके पुरातन वैभव का अनुमान ही लगाया जा सकता है।

संग्रहालयों में सुरक्षित अवशेषों को देखकर ही स्तूप के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। अमरेश्वर {अमरेश्वर} शिव के नाम पर अमरावती एक छोटा सा ग्राम है। यह स्थान गुन्टूर से 18 मील दक्षिण की तरफ स्थित है।

सर्वप्रथम 1897 में कर्नल मकेंजी ने इस स्तूप का पता लगाया था। इससे कई वर्ष पहले स्थानीय राजा ने इस स्तूप के अनेक शिलापट्ट अपने महल एवं नगर के निर्माण के लिए प्रयोग में ले लिए थे। ऐसा करने से बहुत सी

मुर्तियां नष्ट हो गयी थी, किन्तु जो कुछ शेष बचा था, और जो मकेंजी को मिला, उन्होंने इसकी सूचना एशियाटिक सोसायटी बंगाल को दी। वाल्टर, इलियट, रावर्टसन्, सिवेल, बकिंघम, वर्जेस एवं एलेक्जेण्डर री आदि पुरावेत्ताओं ने समय - समय पर इस स्तूप के अन्य भागों की गवेषणा की।।

अमरावती स्तूप का स्वरूप :-

स्तूप पर उपलब्ध शिलालेखों के आधार पर स्तूप के वास्तविक स्वरूप की जानकारी मिलती है। इस स्तूप का नाम महाचैत्य था, जिसकी सूचना शिलालेखों के माध्यम से ज्ञात होती है।

इसका पहला महत्त्वपूर्ण अंग भूमि के अन्दर बनी महावेदिका या महास्तूप की वेष्टनी थी। इस वेदिका का व्यास 193 फुट था। इस स्तूप के प्रत्येक दो स्तम्भों के बीच में तीन - तीन सूचियां बनी थी। स्तम्भों के शीर्ष पर उष्णीष पट्ट बना हुआ था। वेदिका के चारों तरफ 26 फुट चौड़ा तोरणद्वार बना था। इस तरह इस महावेदिका मे कुल 136 स्तम्भ और 348 सूचियां थी। प्रत्येक तोरणद्वार के पीछे की तरफ से स्तूप में से निकलता हुआ मंच निर्मित था। मकेंजी द्वारा प्राप्त

विवरण के अनुसार यह मंच 22फुट लम्बा एवं 6 फुट चौड़ा था। स्तूप के शीर्ष भाग पर महाहर्मिका का निर्माण हुआ था। इसका आकार 24 फुट था। इस देव सदन के ठीक बीच में मोटी यष्ट स्तूप के अण्ड भाग में गहराई तक प्रविष्ट थी, और इसके ऊपर छत्र लगा हुआ था। हर्मिका के चारों तरफ वेदिका की वेष्टिनी थी। अण्ड के पास के भागों में नाचते हुऐ देव और पुजा करते हुऐ मालाधारी देवों की मुर्तियां थी, और देवों के नीचे गाते बजाते यक्षों का अंकन था ।

अमरावती के महाचैत्य स्तूप के निर्माण में शिल्पीयों ने अपनी कला का पूरा प्रदर्शन किया। समस्त आंध्रदेश में यह महास्तूप सबसे विशाल था। वास्तुविधा के जिन आचार्यों ने इस महाचैत्य का निर्माण किया वे कल्पना और विशाल चिन्तन शक्ति से सम्पन्न थे। वास्तुनिमार्ण के क्षेत्र में इस प्रकार का अद्भुत साहस अत्यन्त दुर्लभ है। सातवाहन युग का वैभव इस महास्तूप में कीर्तिमान हो उठा था।

सात्वाहन स्तुपों की तीन विशेषताएं थी। एक संगमरमर जैसा मक्खन के रंग का श्वेत पाषाण, दूसरा अनेक प्रकार से उत्कीर्ण शिलापट्टों

पर रूप और अलंकरण और तीसरी विशेषता, वे धातु गर्भ से निकलती हुई मंजूषा सदृश चार आर्थिक मच्च . जिनसे कालान्तर में ब्राह्मण देव मन्दिरों की रथिकाओं का विकास हुआ।

अमरावती स्तूप पर बहुत सी मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। इनकी विकासात्मक अवस्थाको ध्यान में रखते हुऐ इन्हें चार युगों में विभाजित किया जा सकता है।

1. प्रारम्भिक युग (द्वितीय शती ई॰ पू॰)
2. मध्य युग (प्रथम शती ई॰पू॰)
3. विकास का युग (150 - 200ई॰)
4. अन्तिम युग (तृतीया शती ई॰)

प्रारम्भिक युग में पुरुष एवं स्त्री मूर्तियाँ मिलती हैं। छोटी - छोटी यक्ष की मूर्तियाँ एवं बौद्ध प्रतीक बहुत अधिक मात्रा में मिलते है। गजानन, यक्ष, श्येन व्याल, सपक्ष सिंह एवं सपक्षमृग का अंकन अत्यन्त दर्शनीय है।

द्वितीया युग की शैली मथुरा की कुषाण कला से साम्य रखती हुई दिखाई पड़ती है। प्रतीक एवं मूर्तियों को एक साथ बनाया गया है। शिलापट्टो में गौतमबुद्ध के जीवन की घटनाओंके मनोरम दृश्य अंकित हैं।

-66-

तृतीया या विकास के युग में लक्ष्मी दूड़ामह शिलापट्टों का अंकन कला का प्रमुख उदाहरण है। महावेदिका का निर्माण इसी काल में हुआ। प्रतीकों पादुकापट्ट, अग्निसकन्धसे आबद्ध कला का नवीन रूप है पुण्डरीक सह सम्राट का विकसित रूप इस युग में परिलक्षित होता है। मालाधारी स्त्री एवं पुरुषों की आकृतियाँ उच्चकोटि की है। कहीं - कहीं पर बहुत सी मूर्तियों को एक साथ प्रदर्शित किया गया है।

अन्तिम काल में शिलापट्टों पर कुरेद - कुरेद कर नये दृश्यों का अंकन किया गया। सीमन्त मकरिका नामक शिरोभूषण का अंकन पहली बार इस युग में दिखाई पड़ता है। सिंहमुख या कीर्तिमुख का अंकन नागराज के शिर के अन्दर किया गया है। जिसका विकास बाद में गुप्त काल में हुआ।

अमरावती की कला में जीवन का अपूर्ण उल्लास, आनन्दमय उपभोग और उसके कण - कणों से सौन्दर्य फूट पड़ता है। यहाँ की कला में भक्ति तत्त्व की भी बड़ी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। परन्तु कहीं - कहीं पर हास्योत्पादक दृश्यों का भी अंकन है। यहाँ पर कुछ बुद्ध की मूर्तियाँ ऐसी भी है जिनमें गम्भीरता और उदासीनता पायी जाती है। इन मूर्तियों की ऊँचाई 6 फीट से अधिक है। यहाँ की मूर्तिकला अपने में अति आकर्षक एवं सुन्दर है, तथा यहाँ आदर्श एवं यथार्थ का भी उत्तम मिश्रण है।

नागार्जुनीकोड़ का महास्तूप :-

नागार्जुनीकोड़ का महान स्तूप गुन्टूरजिले के माचरला स्टेशन से 19 मील दूर कृष्णा नदी के दक्षिण तट पर स्थित है। नागार्जुनीकोड़ के तीनों ओर पहाड़ियाँ हैं और चौथी ओर कृष्णा नदी है। अतः इक्ष्वाकु राजाओं ने इसे अपनी राजधानी के लिए चुना। उनके लेखों में इसका नाम विजयपुरी है। विजयपुरी के पास कृष्णा घाटी में बहुत से टीले और स्तम्भसमूह हैं जो प्राचीन स्तूप एवं मण्डपों के अवशेष हैं। उनके बीच में एक बड़े राजप्रसाद के खण्डर है। द्वीपान्तर और रोम साम्राज्य के साथ होने वाला व्यापार विजयपुरी की महती समृद्धि का कारण था, उसी ने यहाँ के महान स्तूप और अन्य बौद्ध विहार - मण्डप आदि संस्थानों में मूर्त रूप ग्रहण किया।

इस स्थान का पता 1926 में लगा सौभाग्य से इस स्तूप के अवशेष बस्ती से दूर बहुत घने जंगल मे थे, जिसके कारण वे मानवीय विध्वंस से बच गये। लांहर्स्त के उत्खनन (1927 - 31) के फलस्वरूप यहाँ अनेक विहार (वृत्तायत) चैत्यधर, स्तूपों के खड़हर, लेख, सिक्के धातु - मंजूषाएं, (मृत्पात्र) मुर्तियाँ और लगभग 400 से अधिक सुन्दर शिलापट्टप्राप्त हुऐ, जो अमरावती की शिल्प शैली के सदृश्य हैं। इनका निर्माण इक्ष्वाकु राजाओं के राजत्व काल में हुआ। यह सब सामग्री स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित है।

श्री रामचन्द्रन ने (1938 - 40) में उत्खनन का कार्य कराया और फिर दूसरी बार 1954से 1959 तक नागार्जुन सागर निर्माण से पूर्व खुदाई का कार्य कराया, जिससे और भी शिल्प सामग्री, विहार, स्तूप, शिला मण्डप, चैत्य गृह तथा हारीती, कार्तिकेय और शिव के मन्दिर मिले।

नल्लमलई या प्राचीन श्री पर्वत की घाटीयों में इक्ष्वाकु राजाओं के बहुत से अवशेष प्राप्त हुऐ हैं। इन राजाओं का मूल स्थान संभवत: दक्षिण कोशल में था, और वे पहले ल० द्वितीय शती के द्वितीयार्ध भाग में सातवाहन राजाओं के सामन्त रहे, और वहां से आकर उन्होंने स्वतन्त्र रूप से विजयपुरी में वासिष्ठीपुत्र श्री क्षान्तिमूल के समय अपनी राजधानी बनाई।

"युवाङ्चाङ्" ने यहां के विहार के विषय मे लिखा है :- यह विहार पंचभूमिक था और इसमें मण्डपों की लम्बी विथियां थी। प्रत्येक खण्ड में चार विहार चार मण्डप थे। प्रत्येकखण्ड के विहार में बुद्ध की सोने की काय-परिणाम मूर्ति थी, जोकला काउत्तम नमूना थी।

यहां आयक खम्भों पर 17 लेख प्राप्त हुऐ हैं। जिनसे इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का वृतान्त ज्ञात होता है। ये राजा वैदिक धर्म के अनुयायी थे, किन्तु इनकी रानीयां बुद्ध की भक्त थी। उन्होंने ही स्तूपों एवं विहारों के लिऐ प्रेरणा और धन प्रदान किया। महाचैतिय के पूर्व में क्षान्तिश्री ने राज्य के अठारवें (18) वर्ष में एक चैत्यगृह और विहार का निर्माण कराया

था। यहाँ पर छोटे बड़े स्तूप कई आकार के थे। सबसे छोटे का व्यास 20 फुट और सबसे बड़े का आकार 120 फुट है। नागार्जुनीकोंड़ में दो प्रकार के स्तूप हैं एक सादे और दूसरे उकेरी सहित। स्तूप पट्टों पर जो उनकी आकृतियाँ हैं और जो वास्तविक अवशेष मिले हैं, उनसे यह बात सिद्ध होती है कि सादे स्तूपों का समापन सुधाकम से हो जाता है। किन्तु काल क्रम से स्तूप के कलेवर को उत्कीर्ण शिलापट्टों के कंचुक से सजाने की प्रवृत्ति बढ़ी जिसे देव दूष्य कहते थे, इसी कारण स्तूपों के लिए "दूष्यस्तूप" यह प्रचलित हुआ।

दूसरे प्रकार के स्तूपों पर उत्कीर्ण शिलापट्टों की कई पंक्तियाँ कंचुक के रूप में लगाई जाती थी। ये शिलापट्ट अधिष्ठान के पादमूल से आयक मंचों की ऊँचाई तक पाये गये हैं। आयक मंच के भूमिगत सम्मुख भाग में बुद्धपट्ट या बुद्ध की जीवन घटना से अंकित कोई अन्य पट्ट लगाया जाता था। उसी की पंक्ति में लगे हुये दूसरे पट्टो पर जातक कथाएँ अथवा बुद्ध की अन्य घटनायें अंकित की जाती थी। दूसरी पट्ट पंक्तियों में स्तूप पट्ट, चक्र पट्ट, नाचते देवता, तुरियावादक आदि से अलंकृत शिलापट्टों का विन्यास किया जाता था। अधिष्ठान की ऊँचाई के समतल चार आयक मंचों की रचना की जाती थी, जिन पर पाँच - पाँच आयक स्तम्भ बनाये जाते थे। यह सभी आन्ध्र स्तूपों का विशेष लक्षण था।

महाचैत्य या महास्तूप :-

उपरापथ के स्तूपों में ठोस ईंटों की चिनाई है, किन्तु नागार्जुनी कोंड़ का यह स्तूप चक्राकृति है, जिसमें नाभि, अर और नेमि के कारण तीन भाग हैं। इनके बीच की पोली जगह मिट्टी कत्तल और इटोरों के भराव से मजबुत की जाती थी, और सबसे अन्त में ईंटों का कंचुक चढ़ाया जाता था। स्तूप के मस्तक की ओर उठती हुई दिवारों की रचना छत्राकार जान पड़ती थी। जिसका पिछला सिरा ऊंचा और आगे का नीचा होता जाता था। दीवारें ऐसी लगती थी मानों खुले हुऐ विराट छत्र की तीलियां हों और बीच का गोल स्तम्भ उन तीलियों को पकड़ रखने के लिएछत्र के मसाले के सदृश था।

आरम्भ में नागार्जुनी का महास्तूप शिलापट्टों से सुशोभित न था, किन्तु वह केवल इष्टिकामय स्तूप था। उसका भीतरी गर्भ विशाल घन चक्कर जैसा था। जिसमें नाभि से चारों ओर निकलती हुई आड़ी दिवारें नेमि तक बढ़ी हुई थी। इस भितरी भाग को ठोस भराव से पुरा करके बाहर ईंटों का खोल चढ़ाया गया, और उस पर सुधाकर्म का काम बनाया गया। केवल आयक मंच और आयक खम्भ पाषाण घटित है। महास्तूप का व्यास 106 फुट और ऊंचाई 70 से 80 फुट तक थी ।भुमीतल पर 13 फुट चौड़ा प्रदक्षिणा पथ था, जो काष्ठशिल्प की वेदिका से घिरा हुआ था।

-71-

आयक मंच 22 फुट लम्बा और 8 फुट चौड़ा था। इसी के समतल 7 फुट चौड़ा बीच का प्रदक्षिणा पथ बना हुआ था। अण्ड के मस्तक पर हर्मिका थी, जिसके बीच में भारी शिलायष्टि थी। उसके ऊपर तीन छत्र बने हुए थे। इनमें से सबसे निचला छत्र मानुष छत्र, बीच का दिव्य छत्र, और सबसे ऊपर का छत्र मोक्ष का सूचक माना जाता था।

इन तीनों छत्रों का सम्बन्ध बुद्ध से था जिसमें उन्हें त्रिछत्रधारी अर्थात तीनों लोकों का शासन करने वाला कहा गया है। स्तूप - पट्टों पर जो स्तूप की आकृति बनी हुई हैउससे ज्ञात होता है कि बीच में त्रिछत्रावली के पास में सप्तछत्रावली भी बनाई जाती थी। सम्भवत:ये सात छत्र सप्तलोक कल्पना के प्रतीक थे। इन्हीं के साथ मालाधारी देव, अंजलीपग्गह्य देव, पुर्णघटधारी देव और वामन यक्षमुर्तियाँबनाई जाती थी आयक शिलापट्ट, जिन पर स्तूप के सब विवरण उत्कीर्ण हैंकला की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है।

उत्खनन से ज्ञात हुआ है कि स्तूप के भीतर उसके तल विन्यास में 40 बड़े कोठे थे। इनमें से बीच के गर्भ से धातु की एक मंजुषा स्तूपाकृति चाँदी की मंजुषा में रखी हुई थी। उसमें कुछ स्वर्णपुष्प मोती, तामड़े और स्फटिक के रत्न पुष्प भी पाए गये। स्तूप के मलवे में कोई उत्कीर्ण शिलाखण्ड नहीं

मिला , इससे ज्ञात होता है कियह आरम्भ से ही बिल्कुल सादा था।

लेखों में कहा गया है कि महाचैत्य का निर्माण बुद्ध पूजा के लिए किया गया, और सम्भव है कि उसकी मंजुषा में बुद्ध कीकोई शरीर धातु का अंश रखा गया हो। यह अनुमान होता है कि मूल स्तूम छोटा था औरबाद में उसका विस्तार किया गया, अर्थात् अल्पेशाख्य को महेशाख्य स्तूप में परिवर्तित किया गया, जैसा कि दिव्यावादन में पाया जाता है। विस्तार का यह कार्य सम्भवत: क्षान्तिश्री ने कराया था ।।

उपसंहार :-

भारतीय इतिहास में शुंग एवं सातवाहन काल स्तूप निर्माण का स्वर्णिम काल था। शुंगों ने उत्तरापथ में और सातवाहनों ने दक्षिणापथ में अशोक द्वारा स्थापित महाकाय स्तूपों को शिलापट्टों से आच्छादित कर उन्हें अल्पेशाख्य से महेशाख्य के रूप में परिणित किया। पहले स्तूप मिट्टी एवं कच्ची इटों से बनाये जाते थे। किन्तु शुंग एवं सातवाहन युग में स्तूप पत्थर के बनाये गये। इस युग में पत्थर का प्रयोग करते हुए स्तूपों मुर्तियों और तोरण वेदिकाओं का निर्माण किया गया था। भरहुत, साँची, अमरावती, बोधगया और नागार्जुनी कोंड़ा जैसे सुप्रसिद्ध स्तूप इसी युग की देन है।

शुंग एवं सावाहन काल के स्तूपों का सुक्ष्म निरिक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये स्तूप अपने समय के जनजीवन का चित्र बड़े ही यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हैं। भरहुत स्तूप में दो हजार वर्ष पूर्व के भारत के दैनिक जीवन का सजीव चित्रण है। लोगों के घर, देवी देवताओं की मुर्तियां, साधुओं के आश्रम, तथा साथ ही साथ गाड़ीयां, रथ, नौकर, वेषभुषा, अस्त्र, पशु पक्षी, जानवर, वृक्ष तथा आभुषण जिनका प्रयोग साधारण रूप से किया जाता था, ये सभी वस्तुएं नितान्त यथार्थवादी एवं स्पष्ट रूप में दिखाई गयी है। ये स्तूप धार्मिक भावनाओं

-74-

और विश्वासों तथा शिष्टाचार सम्बन्धी व्यवहारोंको सुचित करते है और बड़ी ही लगन, कलाकारी, सादगी एवं मेहनत के साथ लगाये गये है। इनमें हम भारत के जनसाधारण के मानस और आदतों के सम्बन्ध में एक अन्र्तदृष्टि प्राप्त करते है। इनमें जीवन के आनन्द तथासुखों की भावना सब को परिव्याप्त किए हुऐ प्रतीत होती है। प्राचीन भारत अपनी सत्य (स्वस्थ) आशावादिता तथाजीवन के प्रति सशक्त विश्वास को इन पाषाणों के द्वारा एक ऐसे स्वर में बोलता हुआ प्रतित होता है जो उन प्राचीन धर्मग्रन्थों के अन्धकार पुर्णनिराशा वादी दृष्टी कोण से एक तीव्र परन्तु मधुर विरोध प्रस्तुत करता है।

अन स्तूपों में स्थापत्य चित्रों काउद्देश्य जनता को महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं तथा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तो से परिचित कराना था। परन्तुचित्रों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वह उद्देश्य गौण हो गया है और कलाकार जीवन का चित्रण करने में इतना संलग्न हो गया कि उसे जनता के नैतिक उन्नयन का कोई विशेष ध्यान नहीं रहा। इनचित्रों का प्रधान केन्द्रबिन्दु न तो आध्यात्मिक हैऔर न आचारवादी बल्कि सम्पूर्ण तथा मानव जीवन से सम्बन्धित है।

भरहुत स्तूप के तोरणद्वारों पर पशुओं एवं वृक्ष लताओं के जो चित्र खुदे हैउनको देखने से यह स्पष्ट हो ज त है कि बौद्ध कलाकारों को केवल मानव जीवन से ही अनुराग न था, परन्तु उनके दृश्य में

सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के लिए स्नेह की भावना विद्यमान थी। प्रकृति के प्रति अन्य प्रेम इन चित्रों की विशेषता है। इस दृष्टि से भरहुत स्तूप के चित्र भारतीय संस्कृति के सर्वभुतानुराग स्थापित करने वाले सिद्धान्त को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। सांची स्तूप के असाधारण द्वार तोरण जिनका निर्माण डा॰ पुसे के मतानुसार विदिशा के गजदन्त नामक शिल्पी ने किया था, इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।

शुंग और सातवाहन काल में स्तूपों में मुर्तिकला एवं वास्तुकला की भी विशेष उन्नति हुई। इस युग के आरम्भ में भरहुत सांची और बौद्धगया के स्तूपों में हमें बुद्ध की मुर्ति कहीं नहीं दिखाई देती, इन्हें सर्वत्र चरण पादुका, छत्र, धर्मचक्र, बौधिवृक्ष आदि के संकेतों से प्रकट किया गया है।

डा॰ वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि :- भरहुत के शिल्पीयों में मानवीय आकृति और आश्रमवासी परिव्राजकों को अंकित करने की पूरी क्षमता थी, और यदि वे चाहते तो सरलत से बुद्ध की मानवीय आकृति भी बना सकते थे। परन्तु उन्होंने प्रतिबन्ध या मर्यादा के कारण कभी इस प्रकार का विचार ही नहीं किया। इस युग के स्तूपों मे आमोद प्रमोद को भी विशेष स्थान दिया गया है। प्राय: यह समझा जाता है कि बौद्धधर्म में दु:खवाद और निराशावाद पर बहुत अधिक बल

दिया गया है। किन्तु साँची, भरहुत, अमरावती, बौद्धगया एवं नागार्जुनी कोड़ा के स्तूपों से यह बात प्रमाणित नहीं होती है। इनके निर्माता यद्यपि बौद्ध थे उनका उद्देश्य स्तूपों को अलंकृत करना था। किन्तु इनकी मूर्तियों में यथार्थवादि प्राकृतिक, ऐंद्रियिक दृष्टिकोण की प्रधानता है। इनमें हमें उस समय के उल्लासपूर्ण जीवन की सच्ची झलक मिलती है।

शुंग एवं सातवाहन काल के भरहुत साँची अमरावती, बौद्धगया एवं नागार्जुनी कोड़ा के स्तूपों की कलाओं में पश्चिमी एशिया के कुछ रूपों तथा कतिपय कला चेष्टाओं का प्रयोग किया गया है। परन्तु इनकी सुन्दरता को देश की निजी कला परम्परा के साथ ऐसा मिलाया गया कि इनका विदेशी रूप लुप्त हुआ प्रतीत होता है।

:===:

संदर्भ ग्रन्थ सूची

§1§	भारतीय कला	डा० वासुदेव शरण अग्रवाल
§2§	साँची के स्तूप	जगदीश चन्द्र
§3§	भारतीय कला का इतिहास	भगवत शरण उपाध्याय
§4§	भारतीय मूर्तिकला	डा० वीणा पवन
§5§	प्राचीन भारत का इतिहास	आर० के० माथुर
§6§	धर्म एवं कला	चित्रा यादव
§7§	इण्डियन आर्किटेक्चर खण्ड ।	पर्सी ब्राउन
§8§	भारतीय मृत्तिका कला	मोती चन्द्र
§9§	दि भरहुत स्तूप	बरुआ
§10§	प्राचीन भारत	सत्य केतु विद्यालंकार
§11§	प्राचीन भारत	डा० श्री कृष्ण ओझा
§12§	भारतीय कला के आयाम	निहार निरंजन राय
§13§	प्राचीन भारत	वी० जी० गोखले
§14§	भारतीय मूर्तिकला	राय कृष्ण दास
§15§	प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर	डा० वासुदेव उपाध्याय
§16§	प्राचीन भारतीय कला	रुद्र प्रसाद यादव
§17§	महाभारत आदि पर्व ।76/15	
§18§	ऋग्वेद 7/2/11, 1x24/7	
§19§	रामायण किष्किन्धा काण्ड अ० 43	
§20§	§लघु शोध§ शुंग एवं सातवाहन कालीन कला	देवेन्द्र गुप्ता

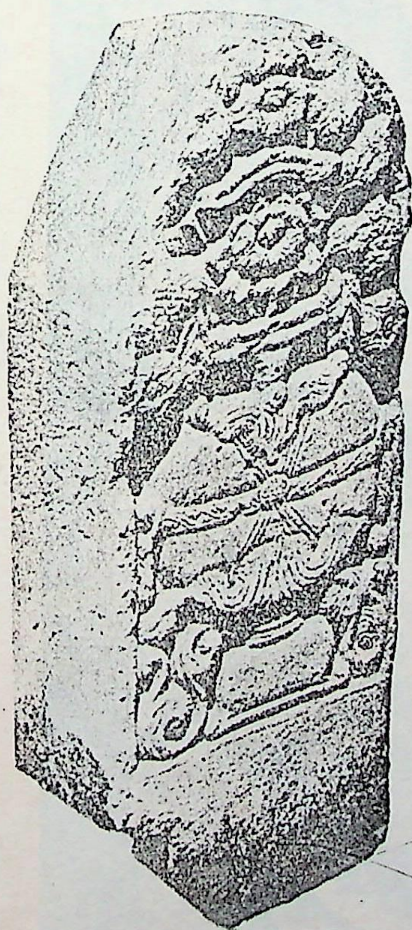
==

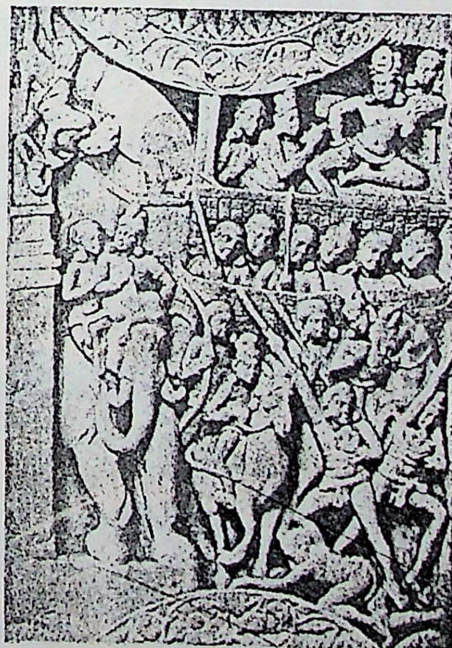




[illegible] नागार्जुनीकोंड [illegible]

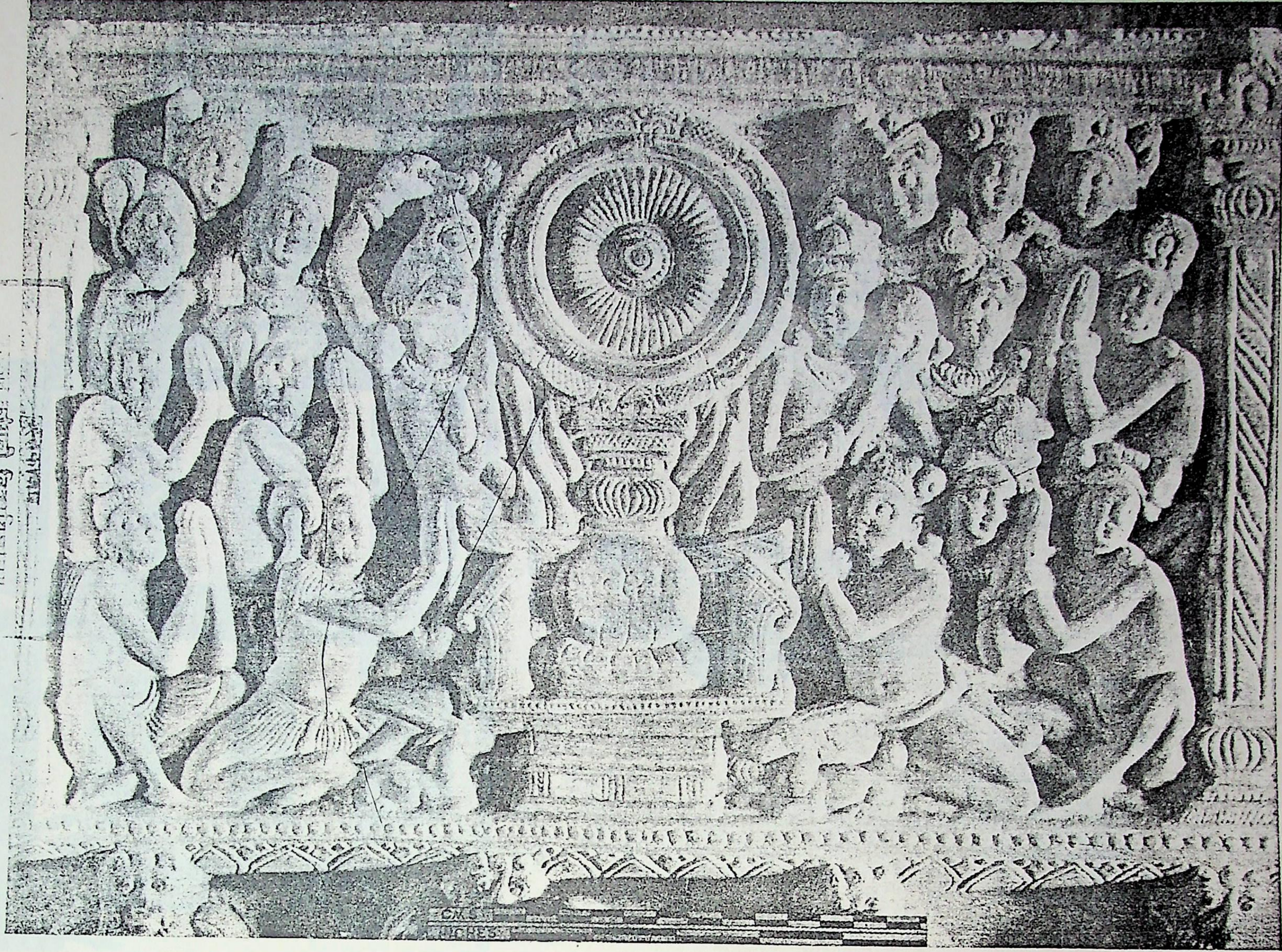
आंध्र शिल्प



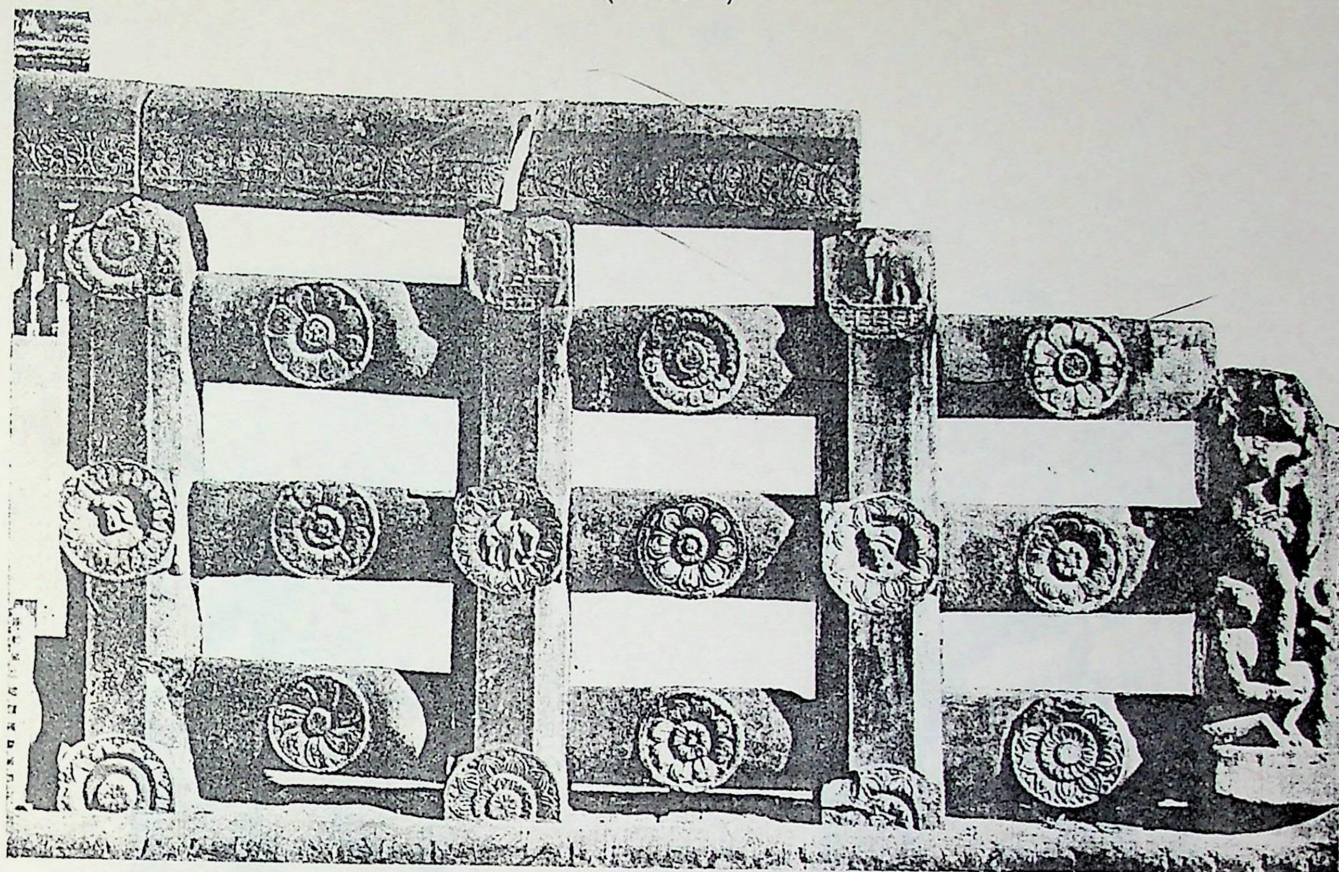




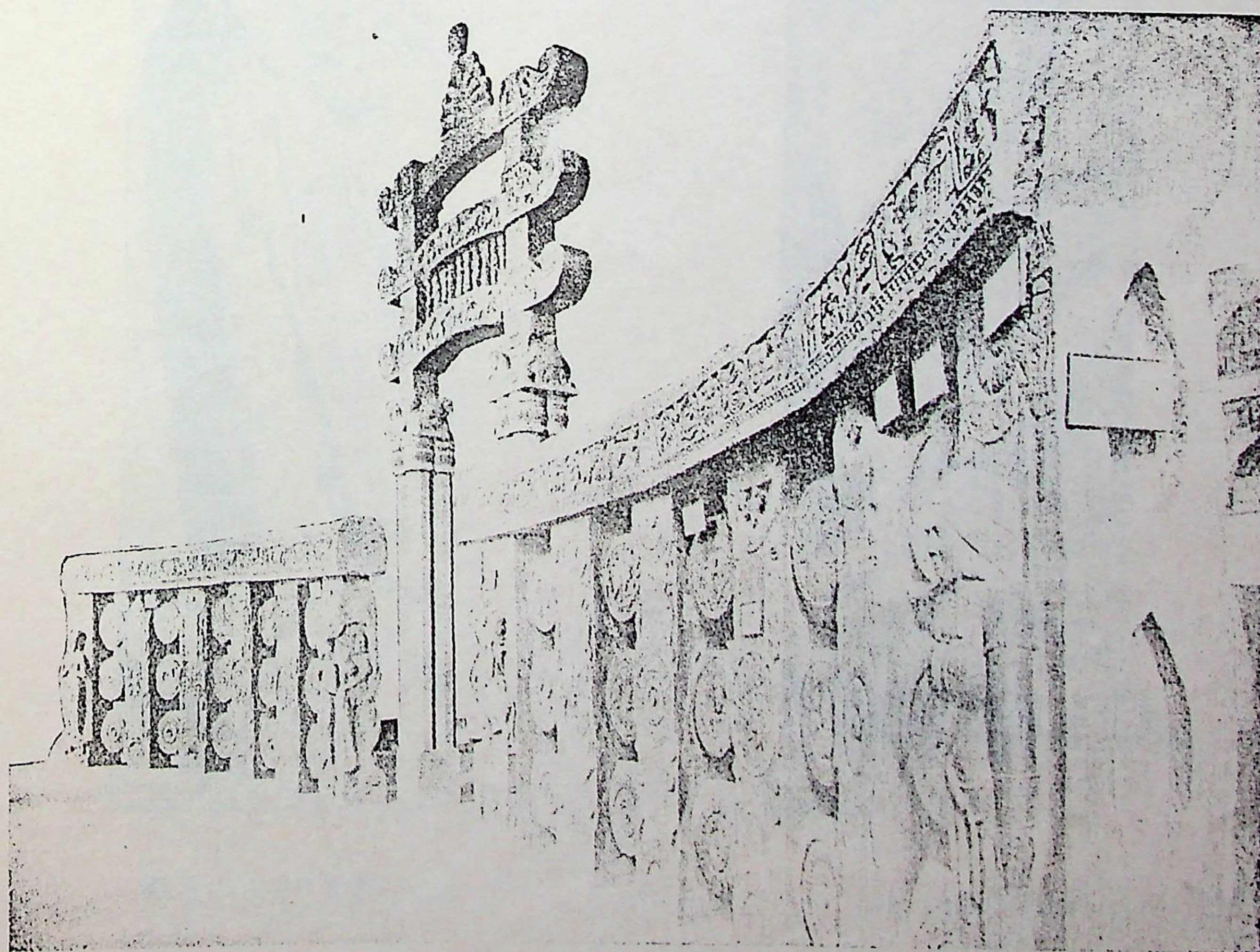
[illegible] अमरावती [illegible] [illegible] नागार्जुनीकोंड



धर्मचक्र-आसन पूजा, नागार्जुनीकोंड



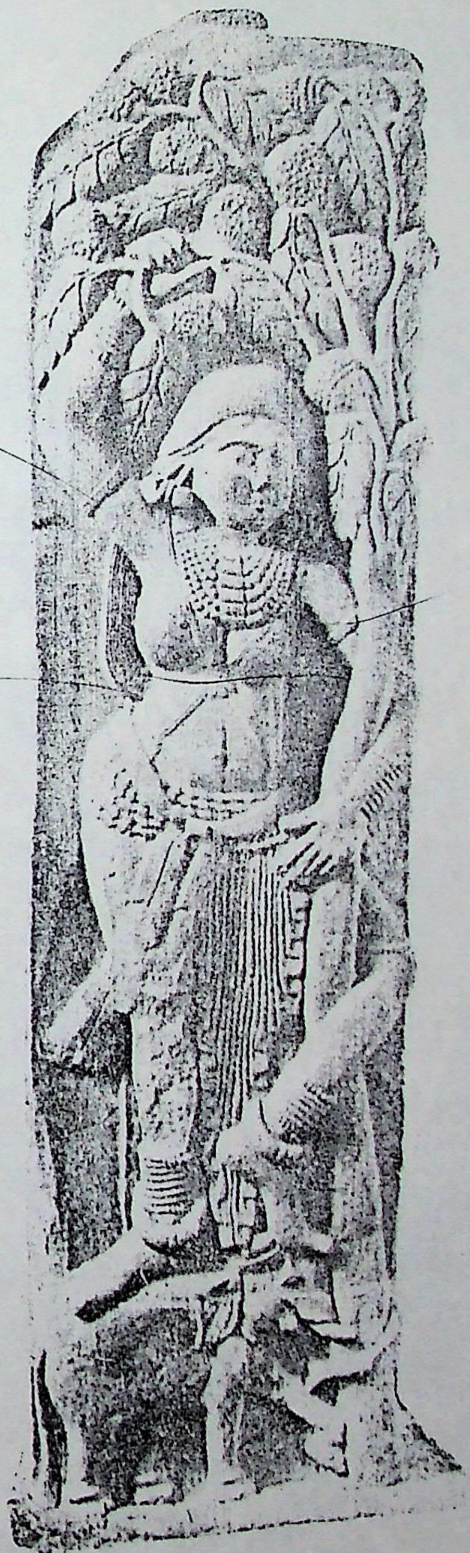
[illegible] प्रस्तर वेदिका, बोधगया



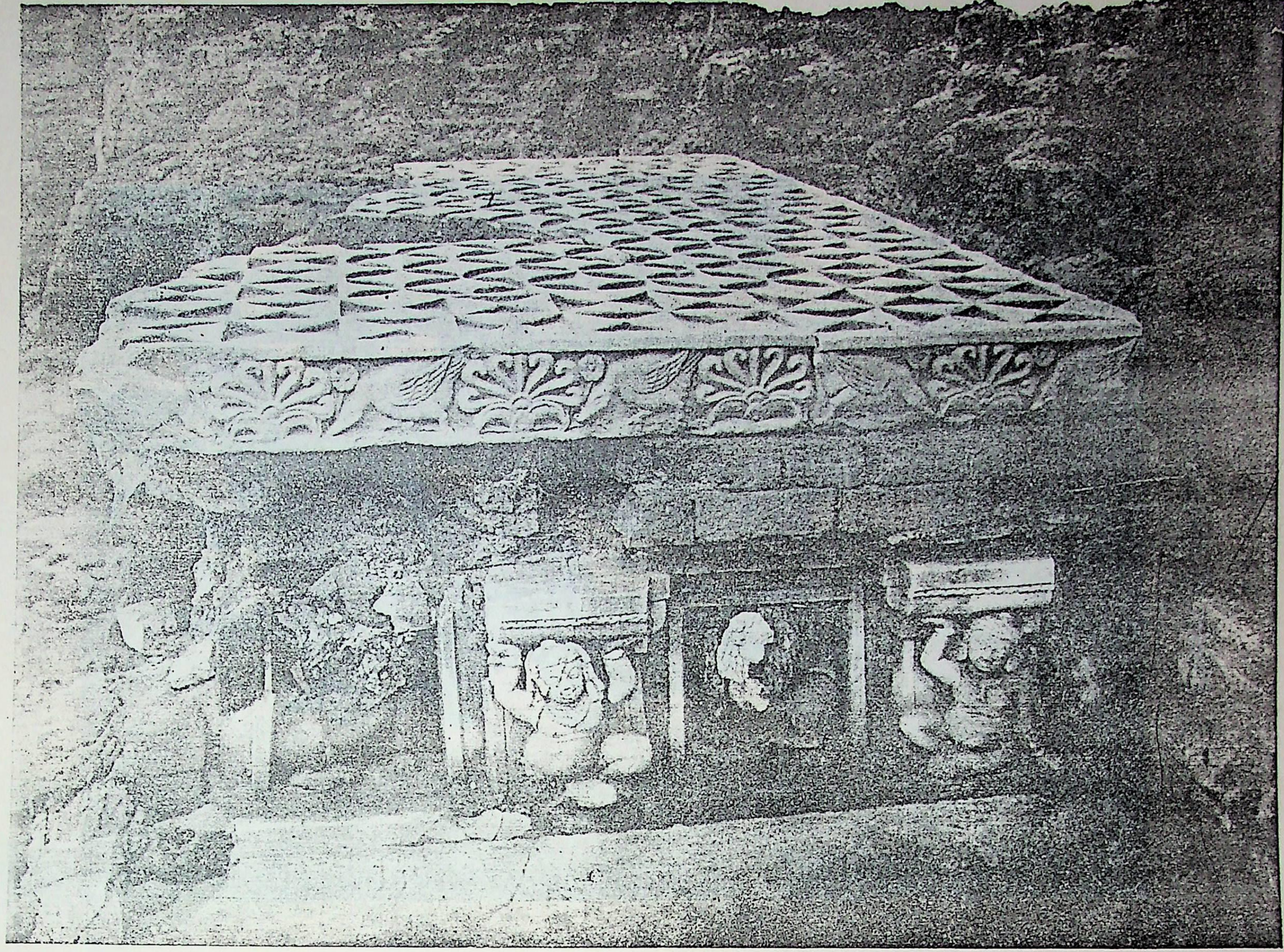
[illegible] भरहुत स्तूप की पुनर्निर्मित वेदिका



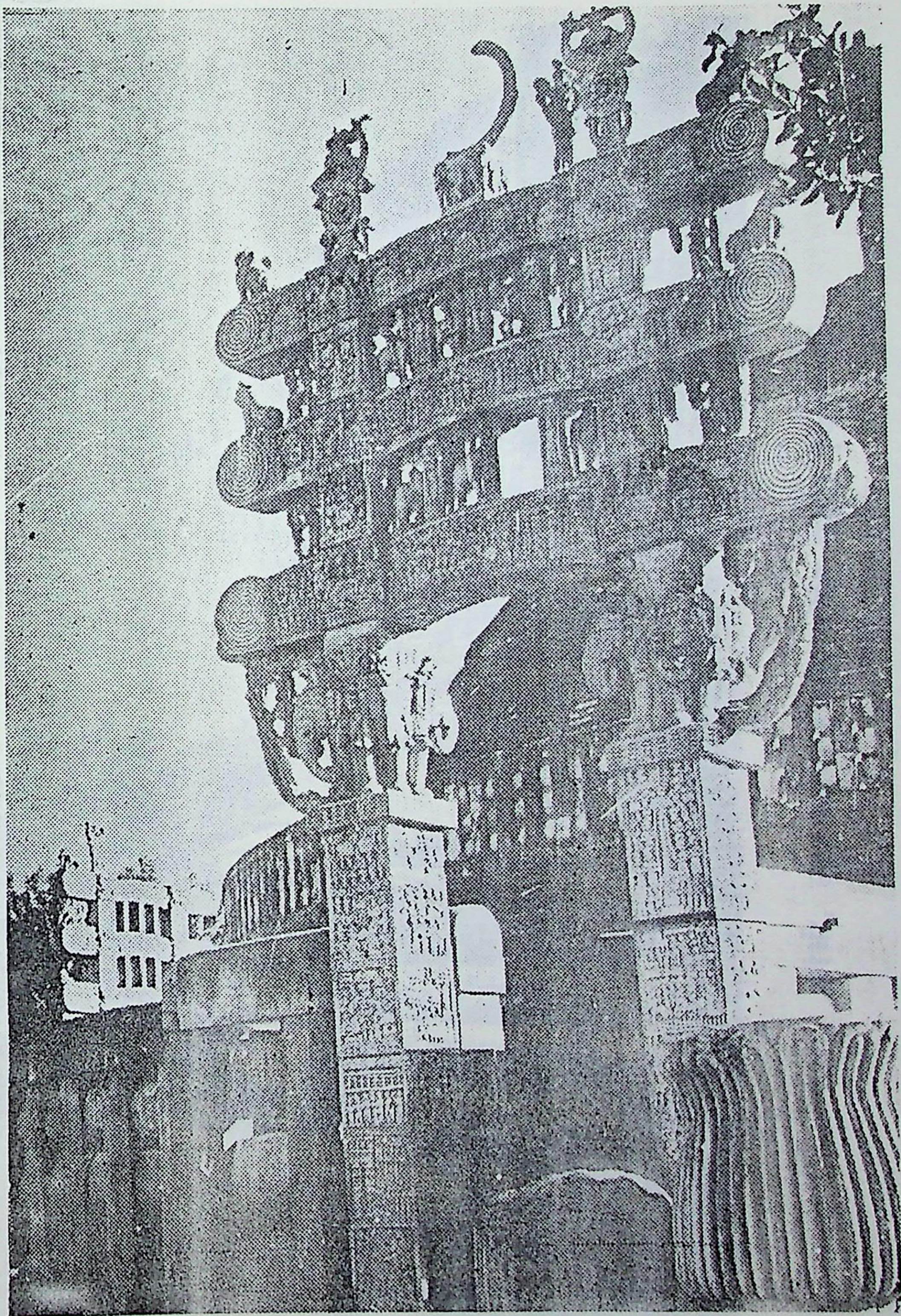
[illegible] मुदर्शना यक्षी भरहुत स्तूप



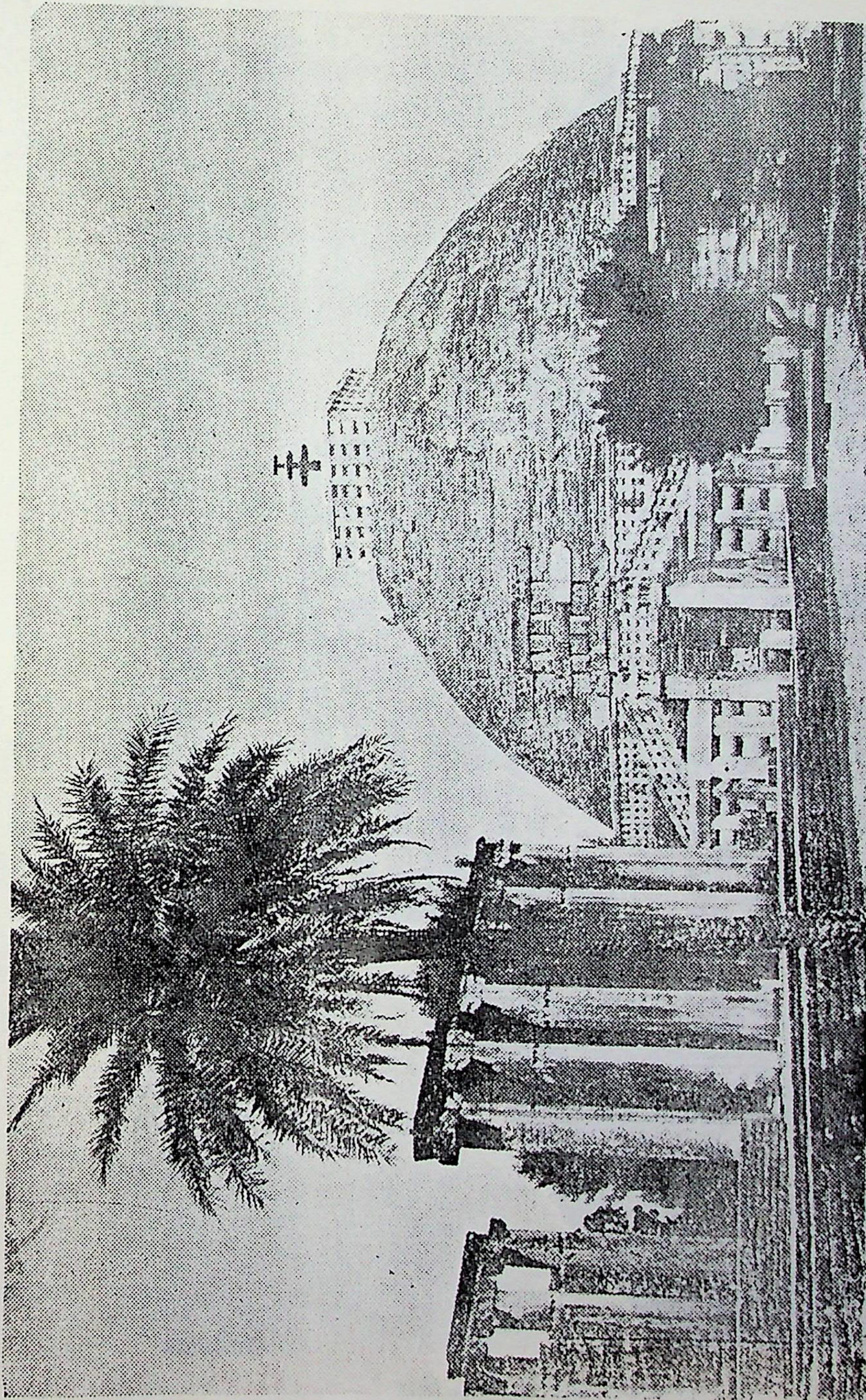
[illegible] चुल्कोका देवता।



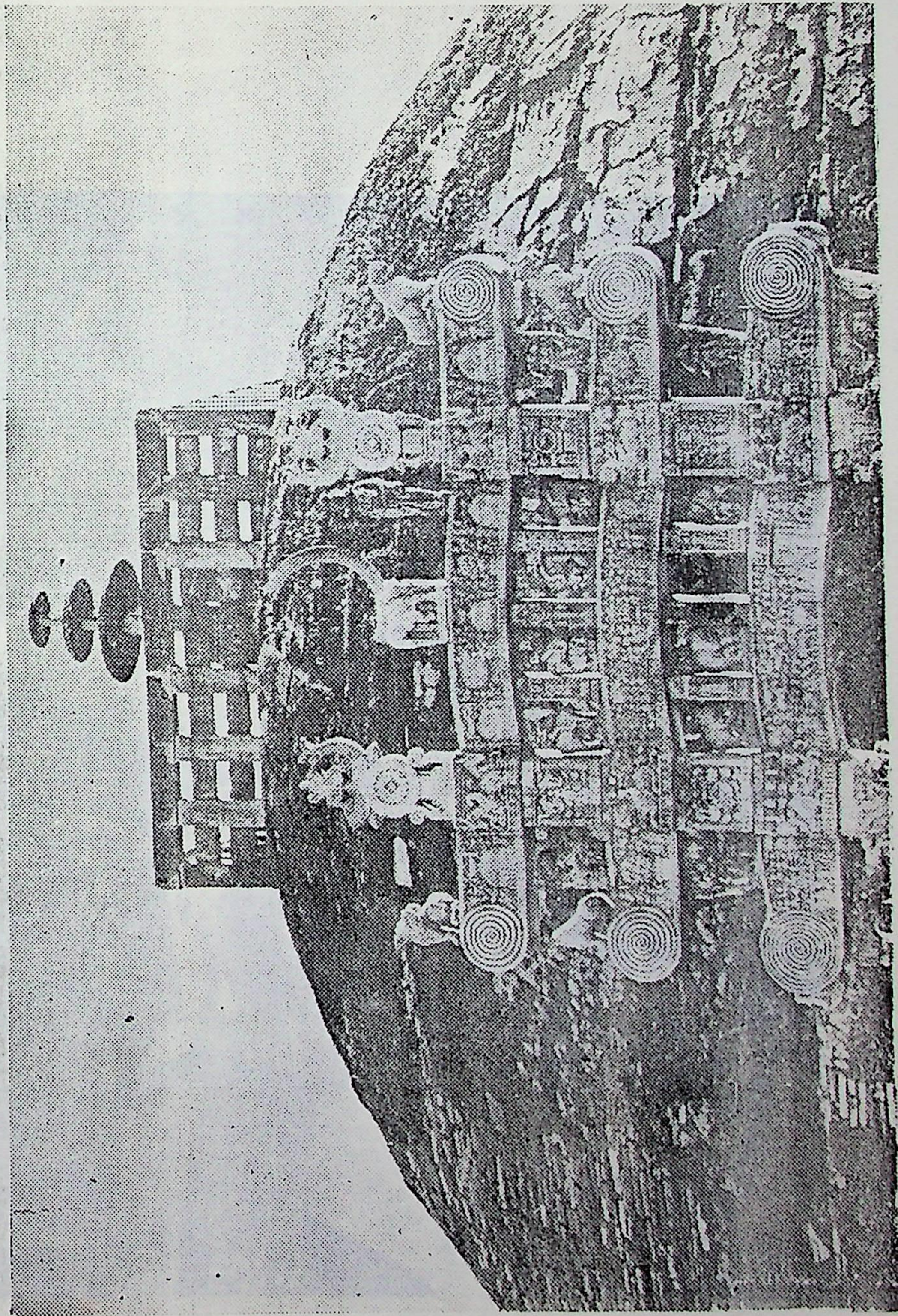
वज्रासन, बोधगया



महास्तूप का उत्तरी तोरण-द्वार

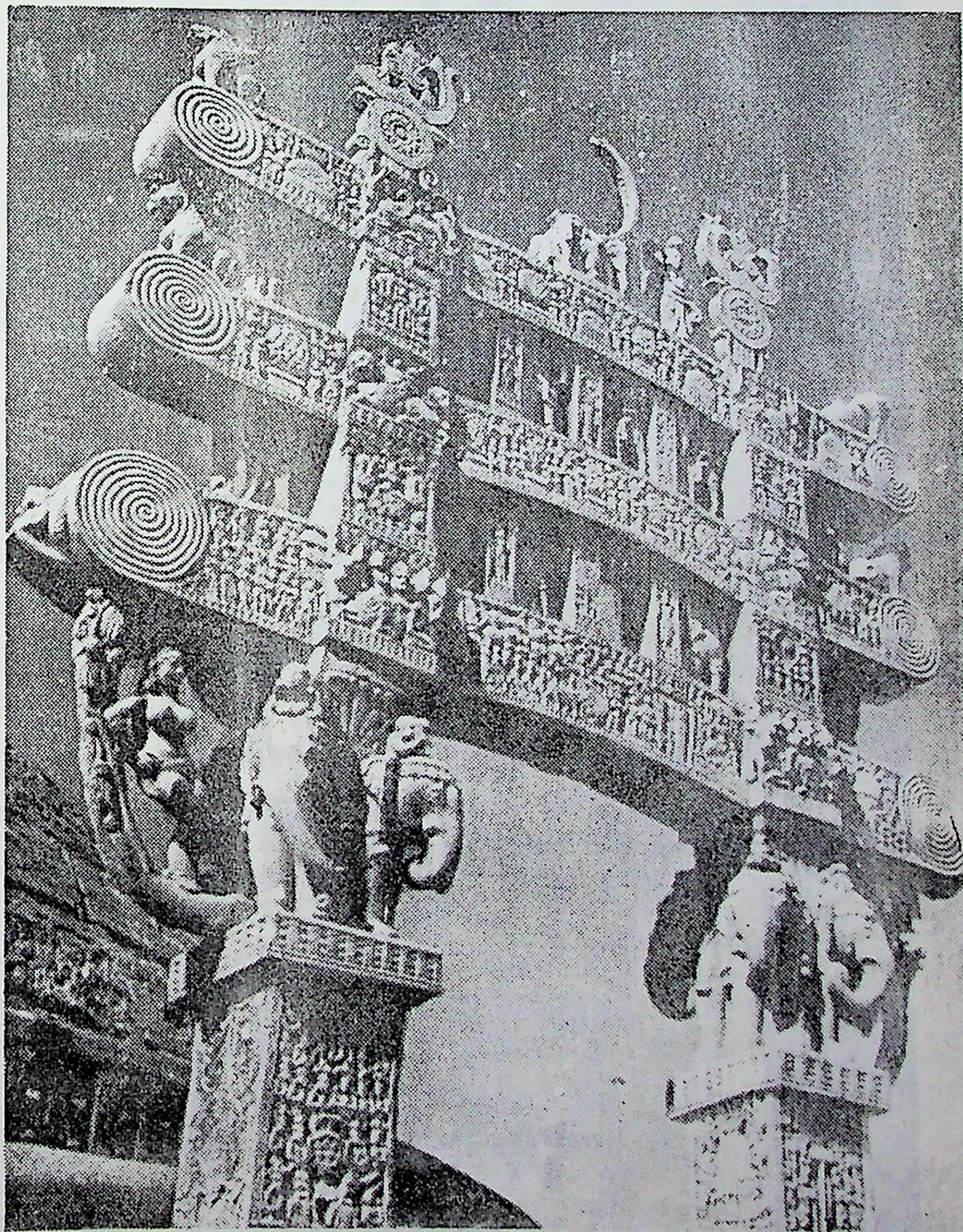


सांची, स्तूप संख्या १ और मंदिर संख्या १८



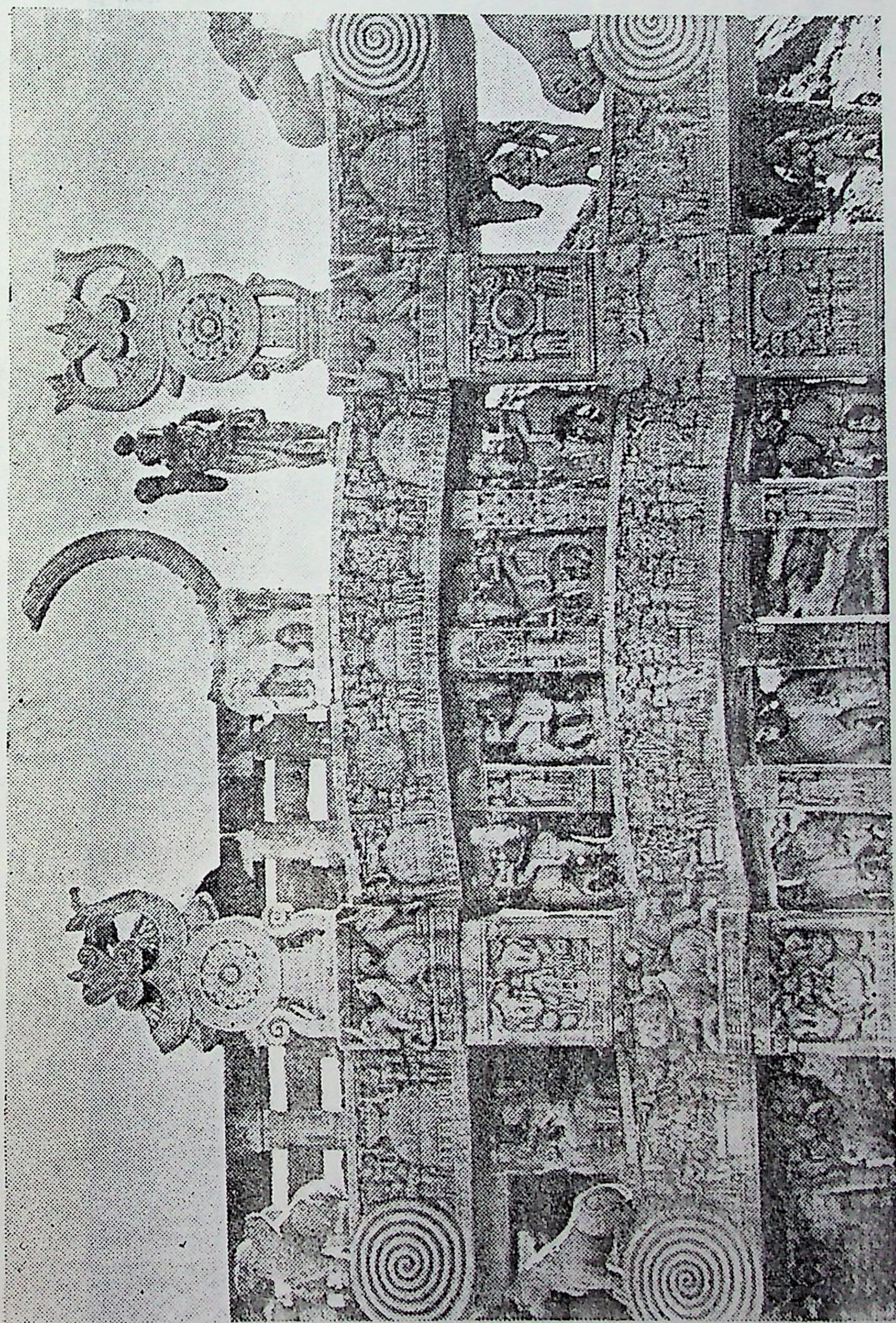
सांची का स्तूप संख्या १, अंड और हर्मिका

फलक — ४



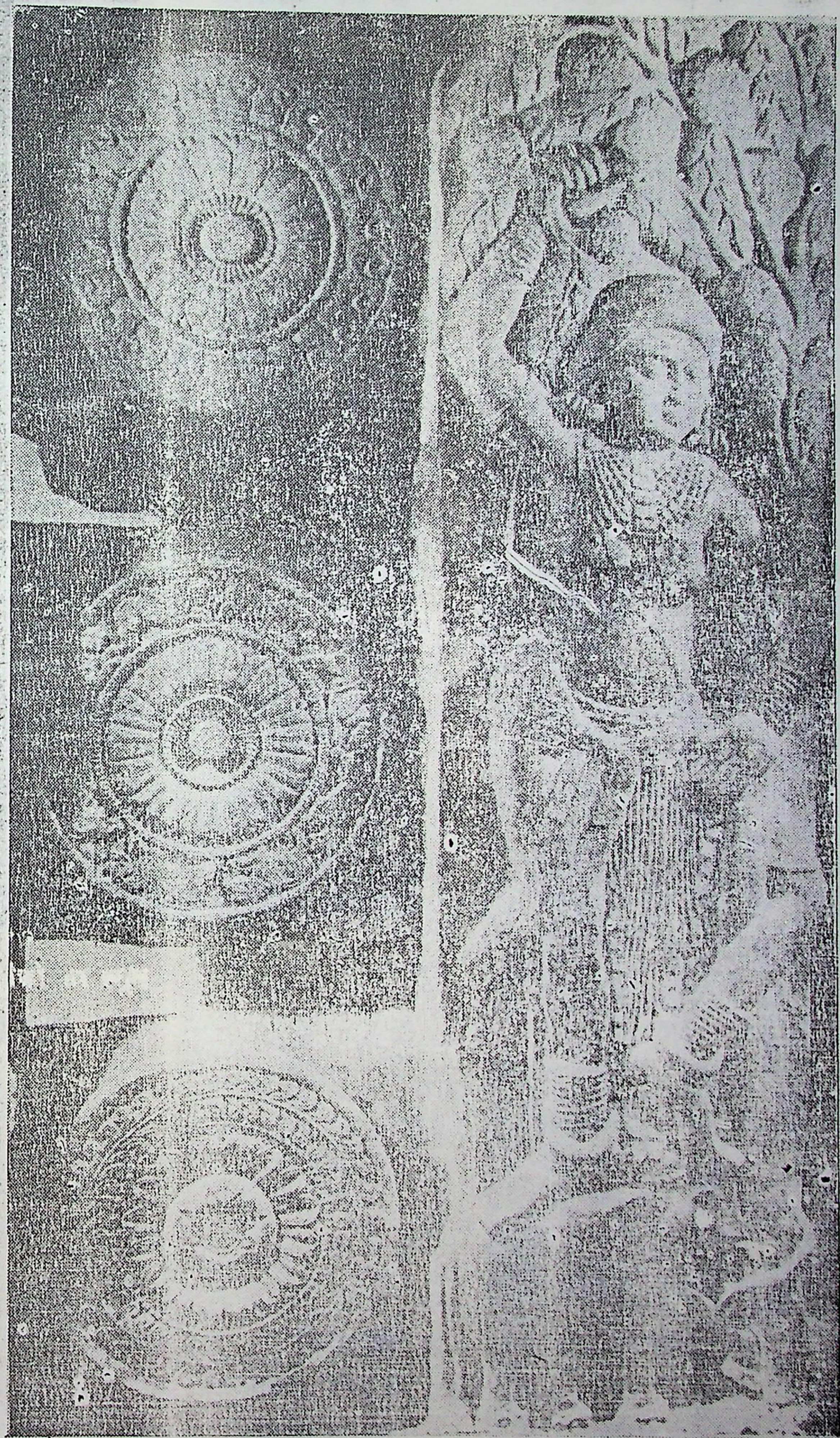
महास्तूप का उत्तरी तोरण





महास्तूप का उत्तरी तोरण निकट से





चित्र

यक्षी, भरहुत वेदिका-स्तम्भ



चित्र १७
तोरण-यक्षी, सांची का स्तूप

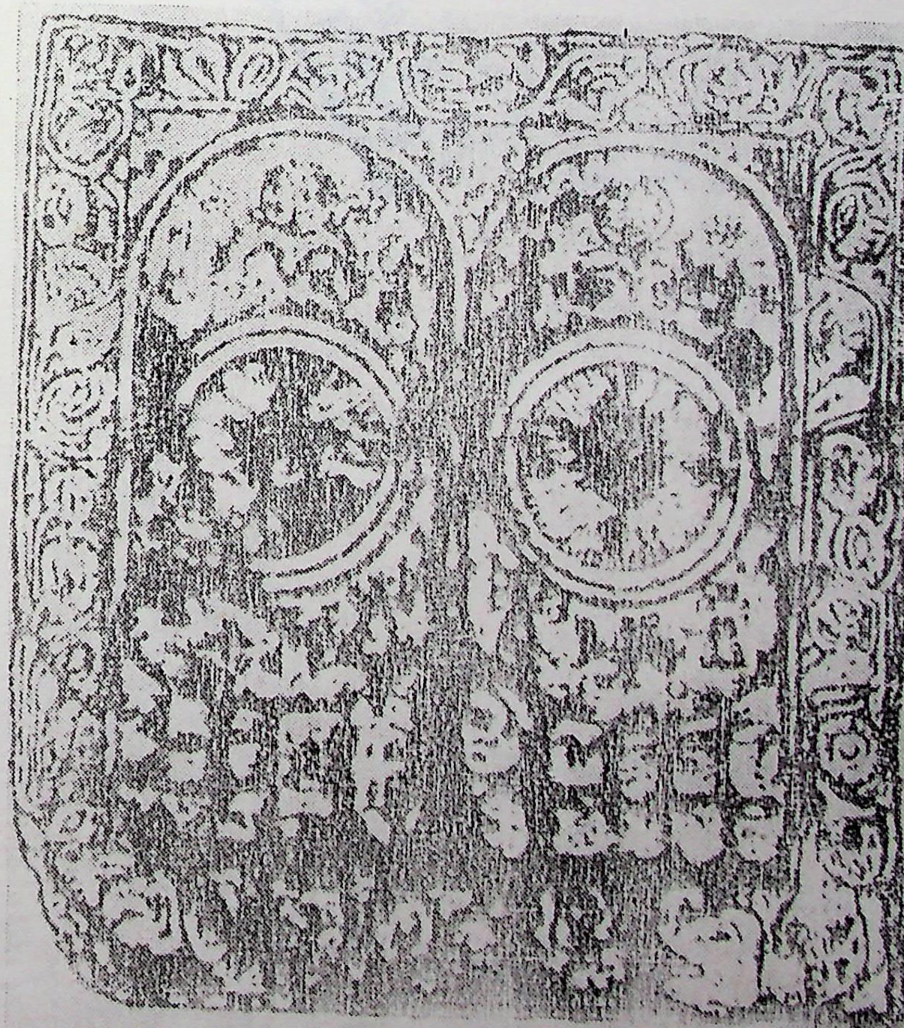


चित्र
यक्षी, भरहुत
वेदिका स्तम्भ



चित्र
पूजन-स्तूप
अमरावती





चित्र
बुद्ध के पदचिह्न
अमरावती